ज़िन्दगी की राह
बालशौरी रेड्डी

दो शब्द

अपने उपन्यास के संबंध में कुछ कहना कठिन है। लेखक का काम वस्तु उपस्थित करना-मात्र होता है। उसकी बारीकियों तथा कमियों का विवेचन करना आलोचकों तथा पाठकों का काम है।

इस उपन्यास में वर्णित कतिपय घटनाएं यथार्थ का स्पर्श करते हुए भी उसकी छाया-मात्र कही जा सकती हैं। कल्पना का आश्रय तो प्रत्येक लेखक को लेना पड़ता ही है। परन्तु घटनाएं अस्वाभाविक न हों। इसमें वर्णित घटनाएं नित्यप्रति हम अपने समाज में घटित होते देखा करते हैं।

पात्रों का निर्माण करते समय मेरा ध्यान इस ओर अवश्य रहा है कि वे वस्तु और वातावरण के अनुरूप तथा सच्चे रूप में समाज के सामने आएं; इसलिए जहां खूबियां दिखाई गईं, वहां दुर्बलताएं भी। ऐसा न होकर अपने पात्रों को आदर्शमय बनाना अथवा नग्न रूप में उपस्थित करना मेरा अभिमत कभी नहीं रहा है।

जिन्दगी की अनेक राहें हो सकती हैं। पर प्रत्येक की राह अपनी होती है, प्रत्येक की समस्याएं भी अपनी ही। अतः इन पात्रों की ज़िन्दगी की भी अपनी विशिष्टता है। इनसे एक की भी ज़िन्दगी को कुछ दिशादर्शन मिले तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस उपन्यास को इस सुन्दर रूप में लाने का श्रेय राजपाल एण्ड सन्ज़ के संचालकों को है। अतः इनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना अपना परम कर्तव्य मानता हूं।

मित्रवर श्री वेलगा रामकोटय्या चौधरी, एम० ए० (प्राध्यापक, लयोला कालेज, मद्रास) ने पाण्डुलिपि तैयार करने में जो सहायता पहुंचाई, उसके लिए मैं अपना साधुवाद देता हूं।

आशा है, हिन्दी जगत् पूर्ववत् इस रचना का भी उचित स्वागत करेगा।

—बालशौरी रेड्डी

हिमाच्छादित पर्वतमाला पर बोइंग विमान उड़ान भरता हुआ मातृभूमि भारत की धरती का स्पर्श-सुख पाने के हेतु वायु-वेग से चलने लगा। शीतकाल की भयंकर सर्दी में पर्वतमाला सिकुड़ी हुई दिखाई दे रही थी। विमान-यात्री निद्रादेवी के शीतल अंक में अपने अस्तित्व को भूलकर शयन-सुख का आनंद ले रहे थे। केवल उद्योग-विभाग के सचिव सोमनाथ की आंखें शून्य में अपनी पुत्रियों के चित्र देखने का असफल प्रयत्न कर रही थीं। रह-रहकर उन्हें अपनी मातृहीन पुत्रियों का स्मरण ताज़ा हो उठता।

दो मास पूर्व भारत से एक प्रतिनिधि-मंडल रूस गया हुआ था। भारत में भारी उद्योगों की स्थापना-सम्बन्धी मामलों पर विचार-विनिमय समाप्त कर प्रतिनिधि-मंडल भारत लौट रहा था। सोमनाथ उस दल का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वे भारत के मेधावियों में अपना अच्छा स्थान रखते हैं। अपनी कार्य-कुशलता तथा व्यवहार-बुद्धि से वे उच्च वर्ग के विश्वास-पात्र बने हुए थे। उनके मस्तिष्क में चर्चा-सम्बन्धी अनेक समस्याएं

चक्कर काट रही थीं। भारत को अन्य देशों की भांति औद्योगिक विकास में उन्नत देखने की योजना रूपरेखाएं प्राप्त कर रही थी।

मनुष्य चाहे जितना ही बड़ा बुद्धिमान, धनवान अथवा चरित्रवान क्यों न हो, समाज में उसका स्थान अलग होता है तथा परिवार में अलग। उस परिवार को लेकर व्यक्ति के सामने अनेक कर्तव्य और अधिकार भी होते हैं। जब व्यक्ति इन समस्याओं को हल करने में सफल होता है तभी वह समाज में भी अपनी ज़िम्मेदारियों का भली भांति पालन करने में समर्थ हो जाता है।

सोमनाथ का परिवार सुसंपन्न था। पत्नी, दो पुत्रियां, नौकर-चाकर, रिश्तेदार एवं मित्रों से सदा उनका घर शोभायमान दीखता था। लेकिन एक वर्ष पूर्व नर्सिंग होम में उनकी पत्नी ने प्रसूति-रोग से पीड़ित हो सदा के लिए इस संसार से विदा ली। सोमनाथ पर इस घटना से मानो वज्रपात हुआ। कुछ दिन खोए से रहे। फिर शक्तिशाली समय ने इस घटना को भुला दिया।

सोमनाथ की काया विमान में तो ज़रूर थी। लेकिन उनका दिल विजयवाड़ा में स्थित अपने परिवार के इर्दगिर्द मंडराने लगा। गांधीनगर के उद्यानवन के सामने स्थित दुमंज़िला मकान उनकी आंखों के सामने चलचित्र की भांति एक बार घूम गया, उनकी सारी ममता और वात्सल्य अपनी

पुत्रियों को देखने के लिए उमड़ पड़ा। अपने कर्तव्य के पालन में वज्र की भांति कठोर दिखाई देनेवाले सोमनाथ का दिल एकांत में मोम की भांति पिघलने लगा। अपनी पत्नी के स्मरण-मात्र से उनकी आंखें सजल हो उठीं। थोड़ी देर बाद उन्हें अपनी पुत्रियों की याद आई। वे अपनी जान से भी ज़्यादा अपनी लड़कियों से प्यार करते थे। वे स्वयं माता बनकर उनकी देख-भाल किया करते थे। लेकिन इधर कुछ असुविधाओं के कारण वे परिवार को अपने साथ न रख सके। उसकी सारी ज़िम्मेदारी बूढ़े नौकर शंकरन नायर को सौंपकर वे निश्चिन्त रहे। जब-तब विजयवाड़ा आते, कुछ समय बच्चों के साथ बिताकर फिर चले जाते।

सोमनाथ के रूस जाते वक्त बच्चों ने तरह-तरह की चीज़ें ला देने की मांग की थी। सोमनाथ उन सब चीज़ों को अपने साथ ले आ रहे थे। इसकी स्मृति-मात्र से एक बार उन्होंने सभी चीज़ों को टटोलकर देखा और मन ही मन यह सोचकर प्रसन्न हुए कि इन वस्तुओं को पाकर लड़कियां बहुत खुश होंगी। उनकी कल्पनाओं का तांता बन ही रहा था कि हठात् विमान के इंजन में कोई बड़ी भारी हरकत हुई और विमान जलने लगा।

सोमनाथ ने बड़ी व्यग्रता के साथ खिड़की से बाहर देखा। चारों तरफ घना अंधकार फैला हुआ था। उस विशाल-विश्व में विमान एक छोटे-से जुगनू की भांति उड़ रहा था।

आखिर मनुष्य कितना छोटा-सा प्राणी है। मृत्यु कैसी भयानक है। सोमनाथ का दिल तेजी के साथ धड़कने लगा। उस शून्य में उनकी पत्नी की छाया अपनी ओर मानो संकेत करती हुई दिखाई दी। सोमनाथ का मन जीवन और मृत्यु-रूपी दो किनारों के बीच मंझधार में फंसी नाव की भांति दोलायमान होने लगा। मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है? जीवन या मृत्यु। क्या मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है? मृत्यु क्या है? एक भावना ही तो है। प्राण वायु है। स्थूल शरीर में सूक्ष्म प्राण का निवास कैसा विचित्र नर्तन है? उसके अभाव में मानव जड़ वस्तु की भांति निश्चिन्त हो जाता है, किन्तु जीवन को लेकर वह कैसा खेल खेलता है इस विश्वरूपी रंगमंच पर! जीवन सत्य है। मृत्यु क्या कभी सत्य नहीं हो सकती? मेरी पत्नी अदृश्य है। पुत्रियां दृश्य हैं। मैं इन दृश्यादृश्यों के बीच धुंधला-सा दिखाई देनेवाला अधूरा चित्र हूं, इस चित्र की रेखाएं विश्वरूपी पट पर कब खींचीं और उन रेखाओं में कैसे रंग उंडेल दिया गया तथा ये रेखाएं अब कैसे मिटती जा रही हैं? एक बार सोमनाथ ने अपनी पुत्रियों का स्मरण किया। वे सोचने लगे कि वे अबोध बच्चियां अनाथ हो जाएंगी। माता-पिता के सुख से वंचित हो जीवन-पर्यंत वे कड़वे घूंट पीते हुए दुःखमय जीवन व्यतीत करेंगी। इस समय वे दोनों निश्चिन्त सोती होंगी। उनको क्या मालूम कि कल प्रातःकाल संसार को रोशनी

प्रदान करनेवाला सूरज उन्हें दुखद समाचार सुनाएगा। इस कल्पना-मात्र से सोमनाथ अपने मन पर काबू न कर सके और बच्चे की तरह कलप-कलपकर रोने लगे। उनकी आंखें फटी हुई सी थीं, और उस अंधकार में वे अग्नि-कणों की भांति जल रही थीं। आग के शोले लपलपाते हुए सोमनाथ के कपड़ों का चुम्बन लेने लगे। इन ज्वालाओं के बीच सोमनाथ ने अनुभव किया कि उनकी चिता वहीं सजाई गई हो।

२

प्रातःकाल का समय। सुरम्य प्रकृति के बीच में स्थित वन किन्नेरा की भांति विजयवाड़ा नगरी धीरे-धीरे अंगड़ाइयां लेने लगी। गांधीनगर के मुहल्ले में चहल-पहल शुरू हुई। 'शांति निलय' के सामने पोर्टिको में 'प्लैमौथकार' खड़ी है। आधुनिक सभ्यता में पली एक नव-यौवना अपने कोमल हाथ में टेनिस-रैकेट लिए उछलती-कूदती कार में जाकर बैठी। कुछ ही मिनटों में वह कार गांधीनगर की मेन रोड पर बड़ी तेजी के साथ सरकती जाने लगी। अभी क्लब का फाटक बन्द ही था। उस युवती ने चपरासी को संकेत किया। टेनिस-कोर्ट के पास पहुंच-कर अपनी सहेलियों की प्रतीक्षा करने लगी।

इधर घर में उसकी बड़ी बहन सुहासिनी कालकृत्य

माप्त कर रेडियो के सामने जा बैठी। प्रतिदिन प्रातःकाल
डियो समाचार सुनने की उसकी आदत थी। उसने ज्यों ही
डियो ट्यून किया त्यों ही उस दिन के कार्यक्रम की घोषणा
ई।......"यह आकाशवाणी, दिल्ली है......समाचार सुनिए,
......कल रात बारह बजे के करीब एक भयंकर हवाई दुर्घटना
हुई। रूस से दिल्ली लौटनेवाला बोइंग विमान सहसा इंजन
के खराब होने की वजह से जलकर पहाड़ की चोटियों से
टकराया और चूर-चूर हो गया। विमान में यात्रा करनेवाले
करीब तीस यात्री मृत्यु के शिकार हुए। कुछ लोगों के शरीर
इस प्रकार जल गए हैं कि पहचाने ही नहीं जा सकते। कुछ शव
पहचाने गए हैं। उनमें एक शव उद्योग-विमान के सचिव श्री सोम-
नाथ का भी है। इस दुर्घटना का समाचार सुनकर दिल्ली के
निवासी शोक-संतप्त हुए। सरकारी कार्यालयों पर उड़नेवाले
झंडे आधे झुकाए गए हैं।"...इस समाचार को सुनते ही सुहासिनी
जोर से चिल्ला उठी—"पिताजी..." और बेहोश हो नीचे गिर
पड़ी। इतने में शंकरन नायर ट्रे में कॉफी लिए आ पहुंचा।
सुहासिनी को हालत देख, बूढ़ा नायर घबरा गया और उसके
हाथ से ट्रे नीचे गिर पड़ा। गिलास टूटकर चूर-चूर हो गया।
जल्दी रसोई में दौड़ा, ठंडा पानी ले आया और सुहासिनी के
चेहरे पर छिड़कने लगा। थोड़ी देर के बाद वह होश में आई
और चिल्लाने लगी—"पिताजी, पिताजी"........नायर की
समझ में कुछ न आया। उसने देखा सुहासिनी का सुन्दर

मुखड़ा कुम्हलाया हुआ है। हमेशा प्रसन्न दिखाई देनेवाली यह आज घबराई हुई है। नायर से कुछ करते नहीं बना। उसने उसे ले जाकर पलंग पर बिठाया और डाक्टर के घर दौड़ा-दौड़ा जाकर उन्हें साथ ले आया।

डाक्टर ने सुहासिनी की नब्ज़ देखी और स्टेथस्कोप से उसके दिल की धड़कन आंकी। तत्काल ही एक इन्जेक्शन और दवा भी दी। सुहासिनी के ज़रा स्वस्थ होने पर उसने बड़ी दीनता से डाक्टर की आंखों में देखते हुए पूछा—"डाक्टर, आपने मुझे क्यों बचाया ?"

"बचाना मेरा धर्म है।"

"अगर मैं नहीं चाहूं तो ?"

"जीवन प्रकृति की सुन्दर देन है। कौन नहीं चाहता ?" सौ साल का वृद्ध भी दम तोड़ते समय यही चाहता है कि दस और जीवे।"

"यदि जीने में कोई आकर्षण न हो तो ?"

"जीवन जीने के लिए और कुछ करने के लिए है, मरने के लिए नहीं। मरना तो एक दिन ज़रूर है, परन्तु प्रत्येक प्राणी की निश्चित अवधि जो होती है।"

"मैं विष पीकर मर जाऊं तो ?"

"कभी-कभी लोग बच भी जाते हैं। हम उन्हें मरने नहीं देते। विष उगलवा देते हैं। कानून की दृष्टि में आत्महत्या महान पाप है।"

समाप्त कर रेडियो के सामने जा बैठी। प्रतिदिन प्रातःकाल रेडियो समाचार सुनने की उसकी आदत थी। उसने ज्यों ही रेडियो ट्यून किया त्यों ही उस दिन के कार्यक्रम की घोषणा हुई।......"यह आकाशवाणी, दिल्ली है......समाचार सुनिए, ...कल रात बारह बजे के करीब एक भयंकर हवाई दुर्घटना हुई। रूस से दिल्ली लौटनेवाला बोइंग विमान सहसा इंजन के खराब होने की वजह से जलकर पहाड़ की चोटियों से टकराया और चूर-चूर हो गया। विमान में यात्रा करनेवाले करीब तीस यात्री मृत्यु के शिकार हुए। कुछ लोगों के शरीर इस प्रकार जल गए हैं कि पहचाने ही नहीं जा सकते। कुछ शव पहचाने गए हैं। उनमें एक शव उद्योग-विमान के सचिव श्री सोमनाथ का भी है। इस दुर्घटना का समाचार सुनकर दिल्ली के निवासी शोक-संतप्त हुए। सरकारी कार्यालयों पर उड़नेवाले झंडे आधे झुकाए गए हैं।"...इस समाचार को सुनते ही सुहासिनी ज़ोर से चिल्ला उठी—"पिताजी..." और बेहोश हो नीचे गिर पड़ी। इतने में शंकरन नायर ट्रे में कॉफी लिए आ पहुंचा। सुहासिनी को हालत देख, बूढ़ा नायर घबरा गया और उसके हाथ से ट्रे नीचे गिर पड़ा। गिलास टूटकर चूर-चूर हो गया। जल्दी रसोई में दौड़ा, ठंडा पानी ले आया और सुहासिनी के चेहरे पर छिड़कने लगा। थोड़ी देर के बाद वह होश में आई और चिल्लाने लगी—"पिताजी, पिताजी"........नायर की समझ में कुछ न आया। उसने देखा सुहासिनी का सुन्दर

मुखड़ा कुम्हलाया हुआ है। हमेशा प्रसन्न दिखाई देनेवाली यह आज घबराई हुई है। नायर से कुछ करते नहीं बना। उसने उसे ले जाकर पलंग पर बिठाया और डाक्टर के घर दौड़ा-दौड़ा जाकर उन्हें साथ ले आया।

डाक्टर ने सुहासिनी की नब्ज़ देखी और स्टेथस्कोप से उसके दिल की धड़कन आंकी। तत्काल ही एक इन्जेक्शन और दवा भी दी। सुहासिनी के ज़रा स्वस्थ होने पर उसने बड़ी दीनता से डाक्टर की आंखों में देखते हुए पूछा—"डाक्टर, आपने मुझे क्यों बचाया ?"

"बचाना मेरा धर्म हैं।"

"अगर मैं नहीं चाहूं तो ?"

"जीवन प्रकृति की सुन्दर देन है। कौन नहीं चाहता ?" सौ साल का वृद्ध भी दम तोड़ते समय यही चाहता है कि दस और जीवे।"

"यदि जीने में कोई आकर्षण न हो तो ?"

"जीवन जीने के लिए और कुछ करने के लिए है, मरने के लिए नहीं। मरना तो एक दिन ज़रूर है, परन्तु प्रत्येक प्राणी की निश्चित अवधि जो होती है।"

"मैं विष पीकर मर जाऊं तो ?"

"कभी-कभी लोग बच भी जाते हैं। हम उन्हें मरने नहीं देते। विष उगलवा देते हैं। कानून की दृष्टि में आत्महत्या महान पाप है।"

"क्या मनुष्य को मरने का भी अधिकार नहीं है ?"

"नहीं, जीने का ज़रूर है। जिलाने का तो डाक्टरों का है।"

"डाक्टर, आप मेरे परिवार की दशा से परिचित होते तो कदाचित् मुझे नहीं बचाते।"

"मैं परिचित होऊं या नहीं, अपना कर्तव्य ज़रूर करूंगा। लेकिन यह तो बताओ कि तुम्हें किस बात की कमी है ?"

"डाक्टर, संसार में सारी संपत्ति भी माता-पिता के अभाव में धूल के समान है।"

"यह तुम क्या कहती हो ? तुम्हारे पिता तो एक बहुत बड़े अफसर हैं। भारत के मेधावी वर्ग में वे काफी मशहूर हैं। उनकी उदारता एवं सच्चरित्रता से कौन परिचित नहीं है ? ऐसे पिता को पाकर कोई भी गर्व कर सकता है। यहां तक कि भारत के लिए भी वे गर्व के कारण हैं।"

"डाक्टर, अब मेरे पिता नहीं रहे……"

सुहासिनी का कंठ गद्‌गद हो उठा। वह एकदम रो पड़ी। डाक्टर के आश्चर्य की सीमा न रही। वे चौंक उठे। फिर पूछा—"तुम पागल तो नहीं हुई हो ?…वे रूस से आज या कल भारत लौटनेवाले हैं। भारत और रूस के बीच औद्योगिक विकास-सम्बन्धी समझौता उन्हींकी कार्यकुशलता पर निर्भर है। वे भी तुम लोगों को देखने के लिए जल्दी विजयवाड़ा आ ही जाएंगे।"

सुहासिनी ने रोते हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर मानो डाक्टर पर बिजली गिर गई।

डाक्टर सुहासिनी को धीरज बंधा ही रहे थे कि पोर्टिको में कार का हॉर्न सुनाई दिया। सरला टेनिस-रैकेट हाथ में घुमाते हुए गुनगुनाती हुई हाल में पहुंची। बूढ़ा नायर सामने आया। वह कुछ कहना चाहता था लेकिन कुछ कह न पाया। उसके दिल के भीतर से दुःख का प्रवाह उमड़ पड़ा। वह फफक-फफक-कर रोने लगा।

"दादा, यह तुम्हें क्या हो गया ?" सरला पूछ बैठी। इतने में बगल के कमरे में अपनी बहन सुहासिनी का रुदन सुनाई पड़ा। एक छलांग में सरला वहां पहुंची। सुहासिनी ने उछलकर सरला को गले से लगाया और ज़ोर से चिल्ला उठी—

"बहन—" और फूट-फूटकर रोने लगी। सुहासिनी के शोक का पारावार न रहा। रोते-रोते उसने सारी कहानी कह डाली। दोनों बहनें कब तक रोती-कलपती रहीं, कहा नहीं जा सकता। डाक्टर ने बहुत कुछ समझाया। लेकिन वे रोती ही रहीं।

३

विजयवाड़ा रेलवे स्टेशन। यात्रियों से सभी प्लेटफार्म खचाखच भरे हुए हैं। इतने में चौथे नम्बर प्लेटफार्म पर मद्रास मेल आ लगी। यात्री सब उतरने-चढ़ने लगे। एक पहले दर्जे के डिब्बे के पास सरला और सुहासिनी खड़ी हुई हैं। बूढ़ा नायर सामान डिब्बे में सजा रहा है। सरला आज सुहासिनी को छोड़कर जा रही है। आज तक ये दोनों बहनें साथ रहीं। आज बिछुड़ते सुहासिनी का दिल बैठ गया। अब उसे अकेली ही घर पर रहना होगा। इस कल्पना-मात्र से वह विचलित हुई और उसका गला भर आया। सरला से आलिंगन करते हुए वह रो पड़ी।

"बहन, आज पिताजी होते तो कितने खुश हो जाते। हमको अनाथ बनाकर इस दुनिया से मुंह मोड़ गए हैं।"—सुहासिनी ने कहा।

"दीदी, पिताजी कहते थे कि मैं डाक्टरी पढ़ूं। माताजी भी यही चाहती थीं। लेकिन आज दोनों नहीं रहे। हमारा बेड़ा कैसे पार होगा, भगवान ही जाने।"—यह कहते-कहते सरला के नेत्र सजल हो उठे। उस शोकातिरेक में दोनों बहनें एक-दूसरी को गले लगाकर रोने लगीं। इतने में दीनदयाल की पुकार से उनका ध्यान भंग हुआ। दोनों ने परिचित कंठ की ध्वनि सुनकर घूमकर देखा। सामने दीनदयाल को पाकर उनके

चरणों पर गिर पड़ीं। दीनदयाल ने दोनों को ऊपर उठाते हुए कहा—"बेटी, घबराती काहे हो? अब दुःखी होने से तुम्हारे पिता लौट नहीं सकते! लेकिन तुम लोगों को चाहिए कि पुत्रियां होकर भी पुत्रों के अभाव का दुःख दूर करें।"

इतने में गार्ड ने सीटी दी। बेतहाशा सब यात्री इधर-उधर दौड़ने लगे। एक कुली ने एक सूटकेस और एक टेनिस-रैकेट लाकर खिड़की से घुसेड़ दिया। गार्ड ने हरी झंडी दिखाई। इंजन भी सीटी देने लगा।

सरला अपनी सीट पर जा बैठी। दीनदयाल ने उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा—"बेटी, अच्छी तरह पढ़ना। पिता का नाम रखना। घर की चिंता न करो।"

"काका, बड़ी बहन का ख्याल रखना। वह नाजुक मिज़ाज की है। जब-तब मुझे पत्र लिखना।"—सरला ने कहा।

"बेटी, तुम नहीं जानती, तुम्हारे पिता मेरे कितने अभिन्न मित्र थे। मुझे उन्होंने कितनी मदद पहुंचाई है। उसे मैं जीवन-भर भूल नहीं सकता हूं। तुम सुहासिनी की चिंता मत करो, जाते ही चिट्ठी लिखना।"—दीनदयाल बोले।

"दीदी, दीदी, तुम रोती क्यों हो? मैं डाक्टर बनूंगी। हमारी हालत फिर अच्छी हो जाएगी। तुम बराबर पिता को याद कर रोती न रहना। जो कुछ होना होता है सो होकर ही रहता है। हमें तो अपना कर्तव्य करना ही होगा। अच्छा

३

विजयवाड़ा रेलवे स्टेशन। यात्रियों से सभी प्लेटफार्म खचाखच भरे हुए हैं। इतने में चौथे नम्बर प्लेटफार्म पर मद्रास मेल आ लगी। यात्री सब उतरने-चढ़ने लगे। एक पहले दर्जे के डिब्बे के पास सरला और सुहासिनी खड़ी हुई हैं। बूढ़ा नायर सामान डिब्बे में सजा रहा है। सरला आज सुहासिनी को छोड़कर जा रही है। आज तक ये दोनों बहनें साथ रहीं। आज बिछुड़ते सुहासिनी का दिल बैठ गया। अब उसे अकेली ही घर पर रहना होगा। इस कल्पना-मात्र से वह विचलित हुई और उसका गला भर आया। सरला से आलिंगन करते हुए वह रो पड़ी।

"बहन, आज पिताजी होते तो कितने खुश हो जाते। हमको अनाथ बनाकर इस दुनिया से मुंह मोड़ गए हैं।"—सुहासिनी ने कहा।

"दीदी, पिताजी कहते थे कि मैं डाक्टरी पढ़ूं। माताजी भी यही चाहती थीं। लेकिन आज दोनों नहीं रहे। हमारा बेड़ा कैसे पार होगा, भगवान ही जाने।"—यह कहते-कहते सरला के नेत्र सजल हो उठे। उस शोकातिरेक में दोनों बहनें एक-दूसरी को गले लगाकर रोने लगीं। इतने में दीनदयाल की पुकार से उनका ध्यान भंग हुआ। दोनों ने परिचित कंठ की ध्वनि सुनकर घूमकर देखा। सामने दीनदयाल को पाकर उनके

चरणों पर गिर पड़ीं। दीनदयाल ने दोनों को ऊपर उठाते हुए कहा—"बेटी, घबराती काहे हो? अब दुःखी होने से तुम्हारे पिता लौट नहीं सकते! लेकिन तुम लोगों को चाहिए कि पुत्रियां होकर भी पुत्रों के अभाव का दुःख दूर करें।"

इतने में गार्ड ने सीटी दी। बेतहाशा सब यात्री इधर-उधर दौड़ने लगे। एक कुली ने एक सूटकेस और एक टेनिस-रैकेट लाकर खिड़की से घुसेड़ दिया। गार्ड ने हरी झंडी दिखाई। इंजन भी सीटी देने लगा।

सरला अपनी सीट पर जा बैठी। दीनदयाल ने उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा—"बेटी, अच्छी तरह पढ़ना। पिता का नाम रखना। घर की चिंता न करो।"

"काका, बड़ी बहन का ख्याल रखना। वह नाज़ुक मिज़ाज की है। जब-तब मुझे पत्र लिखना।"—सरला ने कहा।

"बेटी, तुम नहीं जानती, तुम्हारे पिता मेरे कितने अभिन्न मित्र थे। मुझे उन्होंने कितनी मदद पहुंचाई है। उसे मैं जीवन-भर भूल नहीं सकता हूं। तुम सुहासिनी की चिंता मत करो, जाते ही चिट्ठी लिखना।"—दीनदयाल बोले।

"दीदी, दीदी, तुम रोती क्यों हो? मैं डाक्टर बनूंगी। हमारी हालत फिर अच्छी हो जाएगी। तुम बराबर पिता को याद कर रोती न रहना। जो कुछ होना होता है सो होकर ही रहता है। हमें तो अपना कर्तव्य करना ही होगा। अच्छा,

अब मुझे आशीष दो।"

"बहन, अब मैं कभी नहीं रोकूंगी। तुम अच्छी तरह पढ़ना। अपनी तबीयत का ख्याल रखना"—यह कहते सुहासिनी अपने आंचल से आंसू पोंछने लगी। इतने में गाड़ी रवाना हुई। सुहासिनी और दीनदयाल ने हाथ उठाकर विदाई दी।

गाड़ी की रफ्तार धीरे-धीरे तेज़ होने लगी। एक युवक दौड़ता हुआ आया और पहले दर्जे के डिब्बे में चढ़ा। सरला उसे देखकर चौंक गई।

"अजी यह जनाना डिब्बा है। उतर जाइए।"—सरला ने कहा।

"अच्छा माफ कीजिए। मेरा सामान यहीं है। ज़रा देखते रहिएगा। मैं अगले स्टेशन पर ले जाऊंगा।"—यह कहते हुए युवक उतर गया और दूसरे डिब्बे में जा बैठा। गाड़ी की रफ्तार और तेज़ हुई। सरला ने देखा रैकेट-केस पर 'सुरेश' लिखा हुआ है। उसके साथ एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'स्पोर्ट एण्ड पास्ट टाइम्स' भी है। सरला ने उसके पन्ने उलटना शुरू किया। उलटते-उलटते वह ठिठक गई। एक स्थान पर उसके और सुरेश के चित्र छपे हुए हैं। पिछली बार अन्तर्कॉलेज-खेल-प्रतियोगिता में जो विजयी हुए थे, उनके चित्र परिचय के साथ इस अंक में छपे थे। सरला थोड़ी देर तक देखती रही, फिर वह किसी स्मृति में वह खो गई। केवल उसकी आंखें शून्य में कुछ ढूंढ़ने का प्रयत्न करने लगीं।

लेकिन वह उलझती ही गई, पर उसके हाथ कुछ नहीं लगा। इसी उधेड़बुन में वह कब सो गई, पता नहीं। आंख खुलते ही उसने देखा कि मद्रास स्टेशन पर गाड़ी आ लगी।

४

मद्रास सेंट्रल स्टेशन पर सर्वत्र कोलाहल सुनाई दे रहा है। यात्री गाड़ियों से उतरने और चढ़ने में निमग्न हैं। सब अपने-अपने सामान उतारने के पहले एक बार बड़ी आतुरता के साथ जांच कर रहे हैं। प्लेटफार्मों पर कुली कतारों में खड़े गाड़ियों में सामान चढ़ाने और उतारने में मदद पहुंचा रहे हैं, तो कहीं मजदूरी ठीक करने में निमग्न हैं। सरला ने कुली को पुकारा। अपना होलडाल और सूटकेस लाने का आदेश दे वह डिब्बे से नीचे उतरने लगी। इतने में दौड़ता हुआ सुरेश आ पहुंचा। सरला को देखा, उसकी बांछें खिल गईं। सहमी हुई आवाज में उसने कहा—"माफ कीजिएगा। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। मैं दूसरे स्टेशन पर सामान ले जाना चाहता था, लेकिन गाड़ी छूट गई तो सो गया।"

"ओह, मैं भी तो वहीं जा रही हूं। लेकिन मैं यह नहीं जानती कि कॉलेज किस मुहल्ले में है ?"

"क्या आप पहली बार मद्रास आ रही हैं ?"

"जी हां, मुझे इसके पूर्व कभी मद्रास आने का अवसर नहीं मिला।"

"तो चलिए। टैक्सी करके चलेंगे।"

"बहुत अच्छा हुआ, आपसे मुलाकात हुई न होती तो मुझे बड़ी तकलीफ होती। चलिए, चलें।"

दोनों ने अपना सामान कुलियों को दिया। स्टेशन के बाहर आ गए। एक-एक करके टैक्सियां आने-जाने लगीं। सुरेश ने एक टैक्सी तय की। कुली को पैसे देकर दोनों उसमें जा बैठे। ड्राइवर ने सुरेश का आदेश पाकर टैक्सी स्टार्ट की। कुछ ही मिनटों में मद्रास की चिकनी, सुन्दर एवं चौड़ी सड़क पर टैक्सी सरकती जाने लगी।

सरला को मद्रास का यह वातावरण एकदम नया-सा मालूम होने लगा। उसे अपनी बहन की याद आई। आज वह अकेली किसी महान लक्ष्य को लिए एक अपरिचित युवक के साथ जा रही है। यह जीवन भी कैसा विचित्र है ! मनुष्य संसार में जन्म लेता है तो पहले-पहल माता-पिता और क्रमशः परिवार से परिचय प्राप्त कर लेते हैं। ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों व्यक्ति नई परिस्थितियों से परिचय पा लेता है और नये-नये अनुभव प्राप्त कर लेता है। कुछ लोग

इन परिस्थितियों के साथ समझौता कर आगे निकल जाते हैं। कुछ लोग परिस्थितियों को अपने अनुकूल न बना सकने की हालत में जिन्दगी की रफ्तार में पिछड़े रह जाते हैं, जो व्यक्ति जीवन में आगे बढ़ नहीं पाता है वह यही सोचकर संतोष की सांस लेता है कि उसका भाग्य प्रबल नहीं निकला, बल्कि खोटा है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति भी हैं जो दूसरों की उन्नति पर ईर्ष्या करते हुए अपना समय यों ही नष्ट कर डालते हैं। जिन्दगी में जो व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है उसे नये वातावरण में कभी-कभी विपरीत परिस्थितियों में भी हंसी-खुशी के साथ कदम आगे बढ़ाने पड़ते हैं।

सरला के मन में डाक्टर बनने की अदम्य आकांक्षा थी। उसकी पूर्ति के लिए उसे इस नये वातावरण में खप जाना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य था। उसमें उत्साह का अभाव नहीं। उसकी बुद्धि भी तेज़ है। वह देखने में जितनी सुन्दर है उतनी ही भावुक भी है। यद्यपि यौवनावस्था में वह प्रवेश कर चुकी है, फिर भी उसमें बचपन का वह अल्हड़पन वैसे ही बना हुआ है। आज तक वह घर पर रहकर परिवार की छत्रछाया में पलती रही। अब उसे नये व्यक्तियों के बीच और नये वातावरण में अपने दिन गुज़ारने हैं। इसी उधेड़बुन में वह मौन थी। सहसा सुरेश के वार्तालाप ने उसका ध्यान भंग किया।

सुरेश ने पूछा—"आप होस्टल में रहेंगी या अलग कमरा

"यकीन करो, मैं तुम्हारा फुफेरा भाई हूं, पिताजी को बुलाओ, वे मुझे पहचान लेंगे।"

सुहासिनी अपने पिता के स्मरण-मात्र से सिहर उठी, युवक चकित हो देखता ही रहा। दीनदयाल के जूतों की आवाज़ सुन-कर राजाराम ने पीछे मुड़कर देखा। कोई बुजुर्ग सीधे इसी तरफ घर की ओर चला आ रहा है। राजाराम ने उस व्यक्ति को पहचान लिया। उसे बड़ी खुशी हुई कि ऐन मौके पर वे आ गए। दीनदयाल राजाराम की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देख ही रहे थे कि राजाराम बोल उठा—

"काकाजी, कुशल-मंगल है न?"

दीनदयाल सोचने लगे कि कंठ तो परिचित मालूम होता है। आखिर वह कौन हो सकता है? राजाराम के विस्मय की सीमा न रही। वह बोला—

"काकाजी! क्या मुझे नहीं पहचान रहे हैं? मैं राजाराम हूं।"

दीनदयाल ने एक बार राजाराम को नख-शिख पर्यन्त देखा। सुहासिनी की समझ में कुछ नहीं आया। वह शिला-प्रतिमा की भांति एकटक दोनों की तरफ देखती ही रही। दीन-दयाल ने संभ्रम के साथ सुहासिनी से कहा—

"बेटी, इसको नहीं पहचानती! यह तुम्हारा फुफेरा भाई राजाराम है। पगली कहीं की? जल्दी दरवाज़ा खोलो।"

सुहासिनी ने दरवाज़ा खोला। राजाराम और दीनदयाल

'हॉल' में प्रवेश कर सोफे पर बैठ गए। सुहासिनी के यह समझने में देर नहीं लगी कि राजाराम घर से भागकर शायद मिलिटरी में शामिल हुआ होगा।

"राजाराम, तुम कितने बदल गए हो ? मैं पहचान न सकी। बुरा न मानना।"

राजाराम ने हंसते हुए कहा—"इसमें बुरा मानने की क्या बात है ? लेकिन मामा-मामी और सरला कहां हैं ? कोई दिखाई नहीं देते। कहीं यात्रा पर तो नहीं गए ?"

सुहासिनी का गला भर आया। धीरे-धीरे वह सिसकियां लेने लगी। सुहासिनी को रोते देख दीनदयाल ने उसे समझाया-बुझाया और राजाराम को सारी कहानी सुनाई।

यह समाचार सुनते ही राजाराम का दिल कांप उठा। असह्य दुःख को न रोक सकने के कारण वह भी रो पड़ा। उसे अपने मामा और मामी के स्नेह एवं वात्सल्य की याद आई। वे दोनों उसे कितना प्यार करते थे। अपनी सन्तान की तरह मानते थे। आज वे होते तो वे उसे घर लौटा देखकर कितने खुश होते। उसने इस बात को भूलने की बहुत कोशिश की लेकिन वह भूल न पाया।

बचपन की ये सारी घटनाएं वह सोचता रहा कि इतने में बूढ़ा शंकरन नायर सिनेमा से घर लौटा। 'हॉल' में प्रवेश करते ही उसने राजाराम को पहचान लिया। उसे इस बात की बड़ी खुशी हुई कि मार्ग भूला-भटका पथिक मानो वापस

सकुशल घर पहुंचा है। इस बात का उसे दुःख भी हुआ कि राजाराम को देख अधिक प्रसन्न होनेवाले सोमनाथ और उनकी पत्नी इस संसार में नहीं हैं। बूढ़े नायर के मनोपटल पर भूतकालीन ये सभी बातें चलचित्र की भांति एक बार घूम गईं। उसने राजाराम को बचपन में अपनी गोद में ले खिलाया था और उसीके हाथों में वह बड़ा भी हुआ था। उसके घर से भाग जाने पर नायर को काफी क्लेश पहुंचा था। आज फिर जबकि उसे बिलकुल भूल ही गया था, अचानक अपने लोगों के बीच देख बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाराम को देखते ही झपटकर उसके निकट पहुंचा और गद्गद कंठ से पूछा—"छोटे बाबू, इतने दिनों तक कहां रहे? तुम्हारे लिए हम सब बड़े परेशान रहे। बेचारी तुम्हारी मां कई महीनों तक अन्न-जल छोड़कर रोती-कलपती रही। तुम उसका एकमात्र सहारा हो। फिर तुम्हें देख वह कितनी खुश होगी। क्या माता से नहीं मिले?"—बूढ़ा नायर एक सांस में कह गया।

"दादा, अभी-अभी कश्मीर से आ रहा हूं। कल सुबह अम्मा को देखने ज़रूर जाऊंगा। विजयवाड़ा पहुंचते आठ बज गए। रामापुर के लिए इस समय कोई गाड़ी नहीं है।"

"अच्छा बाबू, हाथ-मुंह धो लो। अभी खाना परोसता हूं। भूखे होगे।"—यह कहकर नायर रसोई की तरफ चला।

दीनदयाल, राजाराम और नायर की बातें सुनते मन ही

मन प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। दीनदयाल भी राजाराम को वहुत चाहते थे। राजाराम को थका और कमजोर देख दीनदयाल को उसपर बड़ी दया आई। उन्होंने राजाराम से कहा—"देखो वेटा, काफी वक्त हो गया है। खाना खा लो और आराम करो। फिर मिलेंगे।" यह कहकर दीनदयाल अपने घर की तरफ चल पड़े। सुहासिनी ने भीतर पहुंचकर भोजन का प्रवंध किया। खाना खा चुकने के वाद नायर ने राजाराम के लिए वरामदे में चारपाई लगा दी और आप ज़मीन पर सो गया।

राजाराम लम्वी यात्रा से काफी थक गया था। इसलिए विस्तर पर जाते ही उसकी आंख लग गई और कुछ ही क्षणों में वह गहरी निद्रा में निमग्न हो गया।

६

धूल उड़ाती हुई मोटर गाड़ी रामापुर में सीतालक्ष्मी के घर के सामने रुक गई। राजाराम होलडाल और सूटकेस लिए अपने घर की ओर चल पड़ा। मिलिटरी पोशाक में किसी युवक को आते हुए देख सीतालक्ष्मी जोकि सूप में चावल लिए कंकड़ वीन रही थी, निर्निमेष देखने लगी। मोटा चश्मा पहने हुए होने के कारण उस युवक की मुख-मुद्रा को वह पहचान नहीं

पाई। लेकिन जब उस युवक ने आकर उसके चरण छुए तब उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सीतालक्ष्मी आंखें फाड़-फाड़कर उस आगंतुक की ओर एक विचित्र दृष्टि डालकर देखती ही रही कि किसी राह जानेवाला यह युवक पागल तो नहीं हो गया है। लेकिन उस युवक का कंठ-स्वर सुनकर वह आश्वस्त हुई कि यह और कोई नहीं, बल्कि उसीका खोया हुआ लाल है।

"मां, मुझे माफ करो। मैंने बड़ी गलती की, तुम्हें तकलीफ पहुंचाई। नायर से यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि तुम मेरी प्रतीक्षा में अन्न-जल त्याग कर दिल्ली को अपना निवास बना ज़िन्दगी काट रही हो। अब आगे तुम्हें कभी तकलीफ नहीं पहुंचाऊंगा, मां! मुझे माफ करो।"

सीतालक्ष्मी का कंठ गद्‌गद हो उठा। उसीकी आंखों से आनन्द-वाष्प छलकने लगे। दूसरे ही क्षण आनन्दातिरेक में उसने राजाराम को अपनी छाती से लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। माता और पुत्र कितनी देर तक वात्सल्य के सुख का अनुभव कर रहे थे, ज्ञात नहीं। हठात् मोटर गाड़ी का हॉर्न सुनकर माता-पुत्र विलग हुए।

राजाराम ने देखा कि उसकी माता का शरीर कंकाल-मात्र रह गया है। हड्डियां उभर आई हैं। आंखें भीतर धंसी हुई हैं और उनकी ज्योति क्षीण हो गई है। उसे लगा कि उसकी मां ज़िन्दगी से निराश हो मृत्यु-रूपी कगार के किनारे ख

ठूंठ के समान है। इसका कारण वह खुद है। माता की कोख से जन्म लेकर उसकी गोद की शीतल छाया में वह पला। पुरुष होकर भी बुढ़ापे में अपनी विधवा मां को सुखी नहीं बना सका। बल्कि उसे व्यथा ही पहुंचाता रहा। इतना होते हुए भी उस वृद्ध माता ने उसकी शिकायत नहीं की। बड़े प्यार से गले लगाया। ओफ! माता कैसी क्षमाशील होती है! उसमें धरती के समान अपार स्नेह, उदारता एवं सहनशीलता होती है। मां अपनी सन्तान के लिए कैसा त्याग और बलिदान करती है। इस संसार में 'मां' न होती तो यह अब तक बया-बान हो गया होता। मानव मानवता से दूर हो पशु बन जाता। उसे अपनी माता की असीम ममता का अनुभव हुआ। लज्जा एवं ग्लानि से उसका सिर झुक गया। विकल होकर एक बार वह जोर से चिल्ला उठा—"मां, मुझे क्षमा करो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगा।"

"बेटा, चिन्ता न करो। होनहार होकर ही रहता है। पश्चात्ताप ही उसका प्रायश्चित्त है। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि तुम सकुशल घर लौट आए हो।"

"अम्मा, मैं कभी घर नहीं छोड़ूंगा—भाग जाने का फल भोग चुका हूं। अगर मैं वह सारी कहानी सुनाऊं तो तुम रोती ही रह जाओगी।"

सीतालक्ष्मी ने बड़ी आतुरता और उद्विग्नता-भरे कंठ से पूछा—"बेटा, क्या मैं नहीं सुन सकती हूं? तुम अपनी मां को

नहीं सुनाओगे तो किसको सुनाओगे ?"

"मां, सुनाने में तो कोई उज्र नहीं, लेकिन सुनने पर तुम्हारा दिल फट जाएगा।"

"कोई बात नहीं है, मैं अपने बेटे की दर्द-भरी कहानी सुनकर चार आंसू गिरा सकूं तो मेरा हृदय भी हलका हो जाएगा।"

"मां, तुम वह कहानी सुनकर ही दम लोगी। लो सुनो।"

राजाराम ने अपनी रामकहानी शुरू की—

"सुहासिनी के इण्टरमीडिएट में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में चाय-पार्टी का जो इन्तज़ाम किया गया, उसमें बड़े-बड़े अफसर, वकील, डाक्टर, प्रोफेसर तथा शहर के प्रतिष्ठित सज्जन आए थे। उन सबने सुहासिनी को बधाइयां दीं, उसकी प्रशंसा की। लेकिन मेरा उपहास किया। मुझे अवहेलना की दृष्टि से देखा। मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया मानो मैं कुछ नहीं हूं, परीक्षा पास करना ही उनकी दृष्टि में मानव-जीवन का महान लक्ष्य है।

"उनके व्यवहार ने मेरी सुप्त मानवता को जगाया। मेरी अन्तरात्मा रो पड़ी। पांच बार इण्टरमीडिएट में अनुत्तीर्ण होने की मुझे ग्लानि हुई। मुझसे छोटी तथा एक लड़की ने इतनी कम उम्र में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किए। उससे बड़ा और पुरुष होकर भी कम से कम उत्तीर्णता के अंक भी प्राप्त नहीं कर सका। इसका कारण मेरी समझ में नहीं आया कि मेरे

फेल होने में दोष मेरे दिमाग का है अथवा शिक्षकों का। जो भी हो उन्हीं परिस्थितियों में सुहासिनी ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। इसपर मुझे बड़ा क्षोभ हुआ और मैं एक मिनट के लिए भी वहां रह नहीं सका। चाय-पार्टी के समय लोगों ने हंसते-हंसते जो बातें की और जो अट्टहास किया, वह मुझे लगा कि मेरा उपहास किया जा रहा है। मैं क्षण-भर उद्विग्न-सा खड़ा रहा और दूसरे ही क्षण भाग खड़ा हुआ।"

"बेटा, भागकर तुम कहां गए?"—सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"मां, मैं नहीं जानता कि मेरे पैर मुझे कहां-कहां घसीटकर ले गए। लेकिन आखिर मैंने अपने को स्टेशन पर खड़ा हुआ पाया। मैं कितनी देर तक प्लेटफॉर्म पर इधर-उधर चक्कर लगाता रहा, मुझे मालूम नहीं। मैं प्लेटफार्म पर खड़ा-खड़ा देखता ही रहा कि सामने जी० टी० ऐक्सप्रेस धुआं छोड़ती स्टेशन पर आ पहुंची। मैं एक डिब्बे में जाकर बैठ गया। मेरा दिल और दिमाग एकदम शून्य था। दूसरे दिन दोपहर के समय टिकट-कलेक्टर ने मुझसे टिकट मांगा। टिकट न पाकर मुझे गाड़ी से उतार दिया और स्टेशन मास्टर के हवाले कर दिया। स्टेशन मास्टर ने मुझे चेतावनी देकर छोड़ दिया। मैं नागपुर की गलियों में भटकता धूल छानता रहा। जब भूख लगती कुछ खा लेता; कहीं नल दिखाई देता तो पानी पी लेता। एक-दो दिन तक किसी सराय और स्टेशन पर अपना अड्डा जमाता रहा। एक दिन भटकते-भटकते मैंने देखा कि 'रिक्रूटिंग

ग्राफिस' के सामने कई युवक खड़े मिलिटरी में भर्ती हो जाने की चर्चा कर रहे थे, मैं भी उनमें शामिल हो गया। हम सबको मिलिटरी में भर्ती करके दूसरे दिन वहां के अफसर ने दिल्ली भेज दिया।"

"दिल्ली, क्या कहा बेटा, दिल्ली देखा, सुनते हैं वहां पर राजेन्द्रबाबू, नेहरू ग्रादि बड़े-बड़े लोग रहते हैं। उन सबको देखा, बेटा ?"

"नहीं मां, उन्हें देखने का मौका ही कहां था ? दिल्ली से हमको सीधे कश्मीर भेजा, हिन्दुस्तान ग्रौर पाकिस्तान की सरहद पर हमारा डेरा पड़ा हुग्रा था। मां, सर्दी में हमारा शरीर कांप जाता था, उंगलियां ठिठुर जाती थीं। कभी-कभी कई दिन तक हम नहा भी नहीं पाते थे। हमेशा डर लगा रहता था कि न मालूम कब दुश्मन हमला कर बैठे। कभी-कभी रात-भर गोलियां छूटती थीं। कभी-कभी तो ग्रचानक दुश्मन हमपर धावा बोल देते ग्रौर जो हाथ लगता उसे उठा ले जाते।"

"बेटा, तुम तो कभी दुश्मन के हाथ नहीं पड़ गए ?"

"क्यों नहीं मां, एक बार मैं रात के समय पहरा दे रहा था कि दुश्मन ने गोली दाग दी। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। वे मुझे उठाकर ले गए, लेकिन कई घंटे तक मुझे होश नहीं ग्राया। फिर उन्होंने मुझे मरा हुग्रा समझकर छोड़ दिया।"

"तो फिर तुम कैसे चंगे हो गए ?"

"दूसरे दिन सुवह मेरे अफसर ने मेरी तलाश कराई। और अस्पताल में मेरी चिकित्सा कराई। ज्यों ही मैं चंगा हुआ त्यों ही ड्यूटी में दाखिल हुआ।"

"क्या तुम अब तक कश्मीर में ही रहे?"

"नहीं मां, कुछ समय के वाद मुझे कांगो भेज दिया, वहां पर हमने जो तकलीफें झेलीं उनके स्मरण-मात्र से अब भी मेरा दिल दहल उठता है। मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और मेरी आंख में खून के आंसू छलकने लगते हैं।"

"क्यों? ऐसी कौन-सी तकलीफें झेलीं?"—विकल हो सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"मां, तुम नहीं जानतीं, कांगो के निवासी मनुष्य नहीं, राक्षस हैं, राक्षस। उनके दिल में दया, स्नेह, प्रेम, करुणा नामक कोई चीज़ नहीं है, वे पल-भर में विगड़ जाते हैं। दूसरे ही क्षण में मार वैठते हैं। उनके जीवन का अपना न कोई लक्ष्य है और न सिद्धान्त ही। हमेशा जान का खतरा वहां वना रहता है। वे हिंस्र पशुओं से भी भयानक और दानवों से भी कहीं अधिक निर्दयी हैं। उनके वीच निवास करना मौत को निमन्त्रण देना है। कितने ही चौकन्ने रहें, उनसे वचना मुश्किल है। आज तक जान हथेली पर लिए मौत की छाया को पल-पल-भर देखते। गम के आंसू पीते हमने एक-एक क्षण गुज़ार दिया है। वहां पर एक क्षण काटने में हमने युग का अनुभव किया। हमारी सांस उखड़ जाती थी। हमारी देह के [illegible]

पड़ती थी, सदा जागते-जागते आंखें फटी-सी जाती थीं, क्या बताऊं ? न ठीक से खाना और न ठीक से सोना। दुःख ही दुःख झेला। एक मिनट की भी शान्ति हमें नहीं मिली।

"हमने कभी नहीं सोचा था कि अपनी मातृभूमि के दर्शन करेंगे, एक दिन अचानक हमें आदेश मिला कि हमारा पूरा बटालियन भारत भेज दिया जा रहा है। हमने बड़ी खुशियां मनाईं। लेकिन भारत पहुंचते ही अचानक आबहवा के बदलने के कारण मैं बीमारी का शिकार हुआ। कई दिन तक बिस्तर पर रहा। लेकिन मेरी तन्दुरुस्ती इतनी अच्छी नहीं हुई कि मैं पुनः मिलिटरी में कार्य कर सकूं, अतः मुझे घर भेज दिया गया।"—राजाराम ने अपनी कहानी समाप्त की।

अपने पुत्र की दर्द-भरी कहानी सुनकर सीतालक्ष्मी ने बड़ी व्यथा का अनुभव किया और दो-चार आंसू गिराए।

७

शाम का सुहावना समय, मद्रास के 'मेरीना बीच' में एक मधुर कोलाहल सुनाई दे रहा है। दूर तक फैला हुआ रेतीला मैदान लोगों से इस प्रकार भरा हुआ है कि कहीं इंच-भर की जगह खाली नहीं दिखाई दे रही है। रंग-बिरंगे वस्त्र पहने

लोग नुमाइश के खिलौनों की भांति नज़र आ रहे हैं। बंगाल की खाड़ी ज़ोर से गरजन करती हुई मानो अपने क्रोध को फेन के रूप में उगलकर किनारे लगा दे रही है। उत्तुंग तरंगें तट से टकराकर चूर-चूर हो रही हैं। बच्चे-बूढ़े व युवक-युवतियां अपनी धोतियां तथा पेंट घुटनों तक ऊपर खींचे समुद्र-जल में उतरकर आनन्द ले रहे हैं। कई परिवार अपने बच्चों को लिए हुए बालू में बैठे समुद्र की हवा का सेवन कर रहे हैं। तो बच्चे शंख और कौड़ियों को बटोरने और घरौंदे बनाने में मज़ा ले रहे हैं।

सागर की लहरों पर अपनी नाव के साथ झूलते हुए पानी में जाल फेंके मछुए मछलियों को पकड़ने में निमग्न हैं। सूर्यास्त हो जाने के कारण एक-एक करके व अपने दिन-भर के परिश्रम से प्राप्त मछलियों को ले किनारे की ओर लौट रहे हैं। समुद्र के किनारे ही ताड़ के पत्तों से बनी झोंपड़ियों से बाहर निकलकर मछुवाइनें अपने-अपने आदमियों की प्रतीक्षा कर रही हैं। झोंपड़ियों के आसपास इधर-उधर फटे हुए जाल व टूटी नावें पड़ी हुई हैं।

संसार-भर में दूसरा स्थान प्राप्त 'मेरीना बीच' से लगी मेरीना सड़क दूर तक सागर और नगर के बीच एक विभाजन रेखा-सी बनी फैली हुई है। सड़क के दोनों तरफ बिजली की बत्तियां अपनी रोशनी फैला रही हैं। कोलतार की सड़कें विद्युत्-कांति से चमचमाती नज़र आ रही हैं। सड़क पर

आने-जानेवाली विभिन्न प्रकार की मोटर कारें विद्युल्लता की भांति चमककर गायव होती जा रही हैं। उसी सड़क के किनारे कतारों में मोटर गाड़ियां खड़ी हुई हैं। 'मेरीना वीच' के केन्द्र-विंदु पर 'एक्टोरियम', 'मेरीना होटल' तथा 'स्विम्मिग पूल' पर लोगों की भीड़ लगी हुई है। होटल की छत खाने-पीनेवालों से भरी हुई है । 'स्विम्मिग पूल' में तैराक कूदते-तैरते डुबकियां लगाते आनन्द ले रहे हैं। पास में ही छोटे-छोटे वच्चे किलकारियां भरते नाना प्रकार के खेल खेल रहे हैं। वहीं पर स्थित रेडियो से फिल्मी संगीत सुनाई दे रहा है। दूर तक फैला हुआ जन-समूह कुंभ मेले का स्मरण दिला रहा है।

चने, मूंगफली, आइसक्रीम इत्यादि के साथ खोमचेवाले चिल्ला-चिल्लाकर लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट कर रहे हैं। लोग दलों में वंटकर अपने किसी अनुकूल स्थान पर हृदय की गांठें खोलते हुए जीवन और जगत् की चिरंतन समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने में तत्पर हैं। कहीं प्रेमी-प्रेमिकाएं हैं तो कहीं पति-पत्नी और कहीं मित्र-मंडलियां जमी हुई हैं। वे सव उस सुहावने समय पर उचित समस्याओं की चर्चा में निमग्न हैं।

मेरीना सड़क पर मद्रास विश्वविद्यालय की इमारतों के सामने देवीप्रसादराय चौधरी द्वारा निर्मित भव्य शिला-प्रतिमा है। उसके अनति दूर में एक सिमेंट-वेंच पर वैठे एक

युवती और एक युवक वार्तालाप कर रहे हैं।

युवक हठात् बोल उठा—"कल की भाषण-प्रतियोगिता में तुमने कमाल किया। मुझे आशा ही नहीं थी कि तुम इतना अच्छा बोलोगी।"

"मैंने क्या कमाल किया? दमयंती का भाषण सुनते तो शायद तुम यह नहीं कहते!"—युवती ने युवक की आंखों में देखते हुए कहा।

"क्यों नहीं सुना? मैं तो अन्त तक था ही। उसकी भाषा में वह मादकता नहीं थी जो श्रोताओं को मुग्ध कर सके। साथ ही आवेश अधिक व विषय-प्रतिपादन का क्रम बेढंगा था।"

"तुम यों ही मेरी प्रशंसा में तो ये बातें नहीं कह रहे हो?"

"देवी की स्तुति करके यह दास क्या पाएगा?"

युवती हंस पड़ी। युवक के निकट सरककर कहने लगी—"ओहो! आज मालूम हुआ कि देवियों की भी उपासना तुम किया करते हो और दास बने फिरा करते हो!"—युवती के कटाक्ष पर युवक सहम उठा। फिर अपने को संभालते हुए उसने कहा—"तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। तुमने अपने भाषण में नारी को इतना ऊंचा उठाया, मानो स्वतन्त्र भारत में पुरुष का स्थान कुछ नहीं है। क्या नारी-समाज में वे आदर्श देखने को मिलते हैं जिन्हें तुमने प्रतिपादित किया था?"

"पुरुष ने सदा नारी को अपनी दासी माना है। कभी

"मेरे परिवार में एक ही पुरुष थे। वे मेरे पिता थे। वे मनुष्य नहीं, देवता थे, देवता! ऐसे पुरुषों की हम जीवन-पर्यन्त पूजा करें तो भी हम उनका ऋण नहीं चुका सकते। वे प्रेम और वात्सल्य के सागर थे। उनका दिल मोम के समान मुलायम, सागर के समान विशाल था। उन्हें सभी चाहते थे और वे सभी को चाहते थे। ऐसे लोग लाखों में एक होते हैं।"

"यह क्यों नहीं सोचती, हजारों और सैकड़ों में भी एक हो सकते हैं?"

"तुम अपने पक्ष के समर्थन में लग गए हो।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं। प्रत्येक पिता अपनी सन्तान से सम्भवतः ऐसा ही प्रेम करता है।"

"नारियां भी अपने भाई, पति और पिता से ऐसे ही स्नेह रखती हैं। यह क्यों सम्भव नहीं?"

"इन सबका समाधान मैंने पहले ही दे दिया है..."

"शेष प्रश्नों का समाधान चलते-चलते हम देंगे। उठो, चलो नौ बजने जा रहा है।"—विनयमोहन ने कहा।

वह युवती और युवक वार्तालाप में इतने निमग्न थे कि विनयमोहन का आना उन लोगों ने देखा नहीं था। दोनों ने सिर उठाकर देखा कि पास में ही विनयमोहन और उनके कुछ साथी खड़े हुए हैं। उनमें एक ने उस युवक से कहा—"सुरेश, जल्दी उठो, मेस में भोजन नहीं मिलेगा।"

"हां भाई, ठीक कहते हो"—यह कहते हुए सरला की तरफ मुड़कर सुरेश बोला—"चलो, सरला! बातों में हमें समय का भी ख्याल न रहा।"

सरला उठी। सब लोग एकसाथ फुटपाथ पर चलने लगे। विश्वविद्यालय की इमारत की घड़ी ने नौ बजा दिए। दूर पर 'हाईकोर्ट बिल्डिंग्स' पर स्थित जहाज़-निर्देशक प्रकाश-स्तम्भ ने अर्धचन्द्राकर में अपना तेजपूर्ण प्रकाश फेंका, मानो वह इन लोगों के घर जाने के लिए सिगनल दे रहा हो।

८

"बेटी, क्या सरला की कोई चिट्ठी आई?"—घर में प्रवेश करते हुए दीनदयाल ने पूछा।

सोफा-सेट पर तकिये लगाते हुए सुहासिनी ने कहा—"कल ही एक चिट्ठी आई थी।"

दीनदयाल ने बड़ी आतुरता से पूछा—"कुशल है, न, क्या लिखा है?"

"लिखा है कि वह मन लगाकर पढ़ रही है। कॉलेज की भाषण-प्रतियोगिता में उसे प्रथम पुरस्कार मिला है।"

"कहा भी है—होनहार बिरवान के होत चीकने पात—बचपन से ही वह बहुत होशियार है। वह समस्याओं का हल

स खूबी के साथ ढूंढ़ती है कि हम जैसे अनुभवी भी उसके
ामने आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यदि यह अपनी बुद्धि और
सूक्ष्म-ग्राहकता का उचित मात्रा में पोषण करे तो तुम्हारे पिता
का यश कायम रखने में समर्थ हो सकती है।"

अपने पिता की खूबियों की प्रशंसा सुनकर तथा अपनी बहन
की विशिष्टता की प्रशंसा सुनकर सुहासिनी के नेत्र गीले हो गए।
उसका हृदय अपूर्व आनन्द से उछल पड़ा। उसे अपने बचपन के
वे दिन याद आए जबकि दोनों बहनें एकसाथ सभी कार्यों में
होड़ लगाकर उत्साह दिखाती थीं। प्रत्येक प्रसंग में सरला
बाज़ी मार ले जाती थी। और माता-पिता तथा आगत
सज्जनों की तारीफ सरला पा जाती थी। इससे कभी-कभी
सुहासिनी के मन में सरला के प्रति ईर्ष्या की भावना भी
उत्पन्न हो जाती। परन्तु दूसरे ही क्षण में वह यह सोचती कि
वह और कोई नहीं, बल्कि उसकी सहोदरी है, इसलिए यह
उसके लिए गौरव की बात है। वह बड़ी होने के कारण अपनी
बहन से काफी सहानुभूति रखती थी। कभी-कभी सरला से
छोटी-मोटी भूल भी हो जाती तो वह अपने पिता के सामने यह
मांन लेती थी कि वह भूल करनेवाली सरला नहीं, बल्कि वही
है।

एक दिन की बात है। सोमनाथ अपनी कीमती कलाई
घड़ी मेज़ पर रख नहाने स्नानागार में गए। समय पाकर सरल
ने घड़ी अपनी कलाई में बांध ली। खेलते-खेलते भूल से उसे फो

दिया। जब उसे अपने पिता के क्रोध का स्मरण आया तो चुपचाप सहमी हुई दबे-पांव घर में पहुंची। मेज़ पर घड़ी रखकर चंपत हो गई। सोमनाथ ने आकर देखा, घड़ी फूटी हुई है। उन्होंने गरजते हुए नायर से पूछा। लेकिन नायर रसोई से बाहर निकला तक नहीं था। यह जानकर सोमनाथ ने सुहासिनी से पूछा। पहले सुहासिनी ने सच्ची बात बतानी चाही, लेकिन उसकी आंखों के सामने अपनी बहन की याचनाभरी और हिरणी की सी सजल आंखें दिखाई दीं। सुहासिनी पशोपेश में पड़ गई। उसके दिल में सच और झूठ के बीच संघर्ष होने लगा। वह अपनी बहन को बचाना चाहती थी और साथ ही अपने को दोषी स्वीकार करने में भी उसकी अन्तरात्मा विद्रोह कर रही थी। उसके सामने समय नहीं था। पिताजी प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में घूर-घूर-कर देख रहे थे, तुरन्त उसने साहस करके गंभीर हो कहा—'मुझसे यह भूल हो गई है।' बस, सोमनाथ की छड़ी सुहासिनी की पीठ पर नृत्य करने लगी। कोमल शरीर की सुहासिनी थोड़ी देर में ज़ोर से चिल्लाकर धम से नीचे गिर पड़ी। उसके बाद चार-पांच दिन तक उसके घावों पर मरहम-पट्टी करनी पड़ी थी।

उस दिन की रात को जब दोनों बहनें एक ही खाट पर लेटी हुई थीं और घर के सब लोग सो रहे थे, सरला की आंखों में नींद नहीं आई। उसने उठकर बत्ती जलाई। अपनी बहन के घावों को देख अपने आंसुओं से उन्हें तर करने लगी।

उस दिन सरला को इतनी ग्लानि हुई कि अपनी बहन की गोद में मुंह छिपाकर रो-रोकर उसने अपने हृदय को हलका कर लिया था।

इसकी स्मृति-मात्र से सुहासिनी को सरला के सामीप्य का अनुभव हुआ।

उसने दीनदयाल की तरफ देखते हुए कहा—"काका, मुझे भी सरला पर बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। वह चंचल है, पर बहुत ही अकलमंद। यदि वह अपनी चंचलता को पढ़ाई में लगा सकेगी तो अवश्य चमक जाएगी।"

"हां बेटी, मैं उसमें ये लक्षण देख रहा हूं। अनुभवहीनता के कारण जल्दबाज़ी में आकर वह कुछ कर डालती है, लेकिन जब वह उसे समझ लेती है, तब पछताती भी है। समय ही उसे पाठ पढ़ाएगा। पूछना भूल गया—वह कब छुट्टी पर आ रही है?"

"अगले महीने में आनेवाली है, काका! दो सौ रुपये भेजने को कहा है। आज इतवार है। कल मैं आपके पास रुपये भेजूंगी। मनीआर्डर कीजिएगा।"

"अच्छा बेटी, ऐसा ही।"—यह कहकर वे उठने ही लगे कि इतने में फाटक के सामने एक घोड़ा-गाड़ी आ रुकी। उसमें से राजाराम और सीतालक्ष्मी उतरे। गाड़ीवाला सामान लेकर भीतर पहुंचा।

सुहासिनी अपनी फूफी और फुफेरे भाई को देख बहुत

प्रसन्न हुई। जब से उसके पिता का देहांत हुआ है तब से वह एकांत में अशांति का अनुभव करती थी। सदा वह अपने लोगों के बीच में रहकर उस दुःख को भूल जाना चाहती थी। उसकी फूफी उसके पिता की मृत्यु के समय आई थीं। इतने दिनों बाद फिर उन्हें देखने के कारण सुहासिनी बहुत आनंदित हुई। क्योंकि फूफी ने ही उसे उपदेश देकर तथा ढाढ़स बंधाकर जीवन में आशा और विश्वास को पैदा किया था। दीनदयाल और फूफी न होते तो सुहासिनी या तो पागल हुई होती अथवा आत्म-हत्या कर ली होती। यही कारण है कि वह इन दोनों को अपना आत्मीय मानती है।

दीनदयाल ने सीतालक्ष्मी और राजाराम से कुशल-प्रश्न पूछा। उन्हें खा-पीकर आराम करने की सलाह दे वे अपने घर चले गए। सुहासिनी अपनी फूफी से बड़े देर तक इधर-उधर की बातें करती रही। इसी बीच में शंकरन नायर ने स्नान-पान का प्रबन्ध किया।

९

दुपहर का समय था। राजाराम, सीतालक्ष्मी व सुहासिनी भोजन समाप्त कर बरामदे में बैठे वार्तालाप करते हुए तांबूल-सेवन कर रहे थे। डाकिये ने आकर सुहासिनी के हाथ

में एक रजिस्ट्री चिट्ठी देते हुए कहा—"इस रसीद पर हस्ताक्षर कीजिएगा।"

सुहासिनी ने हस्ताक्षर करके डाकिये को भेज दिया। रजिस्ट्री को देख उन सबकी जिज्ञासा बढ़ गई। सुहासिनी ने बड़ी आतुरता से लिफाफा खोलकर देखा। उसमें एक चिट्ठी थी, जिसपर केन्द्रीय सरकार की मुहर थी। वह चिट्ठी टाइप की हुई थी। उसके साथ पचास हज़ार रुपये का एक चेक था। सुहासिनी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसकी समझ में नहीं आया कि उसके नाम पर क्यों यह भेज दिया गया।

सीतालक्ष्मी ने चिट्ठी पढ़कर सुनाने का अनुरोध किया। सुहासिनी ने जोर से पढ़ना शुरू किया। उसका सारांश था—"भारत सरकार के एक मेधावी अफसर और उद्योग विभाग के सचिव श्री सोमनाथ की असामयिक मृत्यु पर सरकार खेद प्रकट करती है। उनकी महान सेवाओं से उद्योग विभाग काफी लाभान्वित हुआ है। उनकी अनुपम सेवाओं तथा सरकारी कार्य पर यात्रा के समय उनके निधन होने से उनके परिवार को जो अपार क्षति पहुंची है, उसकी कुछ अंशों में ही सही, सहानुभूतिपूर्वक पूर्ति करने के विचार से केन्द्रीय सरकार उनके कुटुम्बियों को तीस हज़ार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है।

"सोमनाथ ने अपनी सेवाकाल के भीतर संरक्षण कोष मद्दे जो रकम जमा की थी, उसके साथ सरकारी अंश भी मिला-

कर कुल बीस हज़ार रुपये की राशि हो गई है। अतः दोनों अंशों की कुल रकम पचास हज़ार रुपये चेक के रूप में भेजे जा रहे हैं। प्राप्ति की सूचना अपेक्षित है। इस चेक को भुनाने के पश्चात् उसकी सूचना तथा पचास हज़ार रुपये की रसीद रेवेन्यू स्टैम्प के साथ अवश्य भेजें।"

चिट्ठी में सोमनाथ की प्रशंसा सुनते ही सीतालक्ष्मी को अपने भाई की स्मृति ताज़ा हो उठी। पल-भर के लिए वह विचलित हुई। अप्रयत्न ही उसके नेत्रों में आंसू छलक आए। उसे तुरन्त इस बात का ध्यान आया कि बगल में ही सुहासिनी और राजाराम बैठे हुए हैं। उनकी तरफ आंख उठाकर देखा कि वे दोनों रो रहे हैं। सीतालक्ष्मी ने अपने को संभालते हुए कहा—"रोते क्यों हो? अब रोने से वे थोड़े ही वापस लौटने-वाले हैं। यदि हम चाहते हैं कि उनको आत्मा को शांति मिले तो हमें चाहिए कि उनके आदर्शों का पालन करें। वे अपने जीवन के भीतर तुम लोगों के सम्बन्ध में जो स्वप्न देखते थे, उन्हें साकार बनाकर दिखावें। तभी वे चाहे जहां भी हों, हमें देख प्रसन्न होंगे।"

"मां, मैं जितना भी मामा को भूलने का प्रयत्न करता हूं, वे उतने ही मेरे निकट आते जाते हैं। ऐसे पुरुष समाज में बहुत कम होते हैं जो कि अपने परिवार के दायरे को लांघकर सभी प्राणियों को समान समझते हों। वे आचरण और आदर्शों से सबके प्यारे हो गए हैं। इसलिए जब कभी

उनकी याद आती है बरबस आंखों से आंसू बरस पड़ते हैं—"
राजाराम ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा।

सुहासिनी को सिसकियां भरते देख सीतालक्ष्मी ने उसका सिर निहारते हुए समझाया—"बेटी, रोओ मत, यह दुनिया ही अस्थिर है। हम सबको एक न एक दिन इस संसार से विदा लेनी होगी। ऐसी हालत में रोते-कलपते हम अपना समय नष्ट करेंगे तो अपना कर्तव्य नहीं कर पाएंगे। तुम समझदार लड़की हो। तुमको यह सब बताने की ज़रूरत ही नहीं।"

"नहीं फूफी, मैं कभी नहीं रोऊंगी। मैं अपने को रोकने की बहुत कोशिश करती हूं, लेकिन पिता के स्मरण-मात्र से मेरा दिल सीमा लांघकर उमड़ पड़ता है और उसमें बह जाती हूं।"

"तुमने मुझसे वादा भी किया था कि आगे कभी नहीं रोऊंगी। मैंने नहीं सोचा था कि तुम्हारा हृदय इतना दुर्बल है!"—उस रास्ते से गुज़रनेवाले दीनदयाल ने 'शांति-निलय' में प्रवेश करते हुए कहा।

अचानक दीनदयाल को देख सुहासिनी चौंक उठी। आंचल से आंसुओं को पोंछते हुए कहा—"नहीं काका, मैं रो नहीं रही हूं।"

"तुम लोगों की आंखें ही बता रही हैं। सफाई देने की क्या ज़रूरत है?"—सीतालक्ष्मी की ओर देखते हुए दीनदयाल

ने कहा—"तुम भी उनमें शामिल हो गई हो ? आखिर औरत औरत ही है, चाहे वह उम्र में बड़ी क्यों न हो। तुमको चाहिए था कि उनको ढाढ़स बंधातीं।"

"ऐसी बात नहीं भाई। अभी-अभी सरकार से पचास हज़ार रुपये का एक चेक आया था। उसमें एक चिट्ठी भी थी। भाई की प्रशंसा की गई थी। उस चिट्ठी को पढ़ते-पढ़ते हम सब अपने ऊपर नियंत्रण नहीं कर सके।"—सीतालक्ष्मी ने सफाई दी।

दीनदयाल पास में पड़ी हुई कुरसी पर बैठे। सुहासिनी ने चिट्ठी उनके हाथ में दी। चिट्ठी पढ़ते ही दीनदयाल का मुंह तेज-विहीन होने लगा। चिट्ठी पढ़ना समाप्त कर गहरी सांस लेते हुए कहा—"आखिर बहुमूल्य मानव जीवन का मूल्यांकन कागज़ के टुकड़ों पर किया जाने लगा है। सोमनाथ जीवित होते तो लाखों और करोड़ों रुपयों से भी उनका मूल्यांकन नहीं हो सकता। मैं जानता हूं, उनके जीवन में कई ऐसे अवसर आए जबकि उनके चरणों पर हज़ारों व लाखों रुपयों की थैलियां रखकर उनसे याचना की गई थी कि हमको कारखाना अथवा उद्योग खोलने की अनुमति दिलाई जाए। लेकिन उस महामानव ने एक कौड़ी भी ग्रहण नहीं की थी। वे चाहते तो अब तक करोड़ों रुपयों की संपत्ति के स्वामी होते। उनकी संतान दर्जनों पीढ़ियों तक आराम से उस संपत्ति का उपभोग करती। परन्तु वह प्रतिष्ठा उन्हें प्राप्त नहीं होती

उनकी याद आती है बरबस आंखों से आंसू बरस पड़ते हैं—"
राजाराम ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा।

सुहासिनी को सिसकियां भरते देख सीतालक्ष्मी ने उसका सिर निहारते हुए समझाया—"बेटी, रोओ मत, यह दुनिया ही अस्थिर है। हम सबको एक न एक दिन इस संसार से विदा लेनी होगी। ऐसी हालत में रोते-कलपते हम अपना समय नष्ट करेंगे तो अपना कर्तव्य नहीं कर पाएंगे। तुम समझदार लड़की हो। तुमको यह सब बताने की ज़रूरत ही नहीं।"

"नहीं फूफी, मैं कभी नहीं रोऊंगी। मैं अपने को रोकने की बहुत कोशिश करती हूं, लेकिन पिता के स्मरण-मात्र से मेरा दिल सीमा लांघकर उमड़ पड़ता है और उसमें बह जाती हूं।"

"तुमने मुझसे वादा भी किया था कि आगे कभी नहीं रोऊंगी। मैंने नहीं सोचा था कि तुम्हारा हृदय इतना दुर्बल है!"—उस रास्ते से गुज़रनेवाले दीनदयाल ने 'शांति-निलय' में प्रवेश करते हुए कहा।

अचानक दीनदयाल को देख सुहासिनी चौंक उठी। आंचल से आंसुओं को पोंछते हुए कहा—"नहीं काका, मैं रो नहीं रही हूं।"

"तुम लोगों की आंखें ही बता रही हैं। सफाई देने की क्या ज़रूरत है?"—सीतालक्ष्मी की ओर देखते हुए दीनदया

ने कहा—"तुम भी उनमें शामिल हो गई हो? आखिर औरत औरत ही है, चाहे वह उम्र में बड़ी क्यों न हो। तुमको चाहिए था कि उनको ढाढ़स बंधातीं।"

"ऐसी बात नहीं भाई। अभी-अभी सरकार से पचास हजार रुपये का एक चेक आया था। उसमें एक चिट्ठी भी थी। भाई की प्रशंसा की गई थी। उस चिट्ठी को पढ़ते-पढ़ते हम सब अपने ऊपर नियंत्रण नहीं कर सके।"—सीतालक्ष्मी ने सफाई दी।

जो कि आज उन्हें प्राप्त है।

"ऐसे महान व्यक्ति का हमारे बीच में रहना हम लोगों के लिए भी गौरव की बात है। उनसे मैंने कई बातें सीखीं। जीवन पर्यन्त मैं इसके लिए कृतज्ञ हूं, रहूंगा। तुम लोग धन्य हो, ऐसे व्यक्ति की संतान या बहन हुई।

"मैंने पहले भी कहा था कि व्यक्ति के अभाव में आंसू बहाना उतना अच्छा कार्य नहीं जितना कि उनके आदर्शों पर चलना। हमेशा उनकी स्मृति में रोते रहेंगे तो जीवन नीरस हो जाएगा। हम अपने कर्तव्य करने से वंचित हो जाएंगे। जो व्यक्ति अपना कर्तव्य नहीं करता है, वह उत्तम नागरिक भी नहीं कहा जाएगा। इसलिए मैं चाहता हूं कि आगे कभी तुम लोग इस प्रसंग को लेकर दु:खी न हो। हां, उनके आदर्शों का अवश्य पालन करने की भावना हृदय में रहे।"

दीनदयाल के विचारों से तीनों बहुत प्रभावित हुए। उन सबने वचन दिया कि उनके उपदेशों का पालन किया जाएगा।

सीतालक्ष्मी ने दीनदयाल को धन्यवाद देते हुए कहा—"भाई, यह चेक ले जाकर बैंक में सुहासिनी के नाम पर जमा कीजिए।" फिर सुहासिनी की ओर मुखातिब होते हुए बोली—"बेटी, चेक काकाजी के हाथ में दे दो।" सुहासिनी ने वह चेक दीनदयाल के हाथ में दे दिया। दीनदयाल राजाराम को साथ लेकर चेक बैंक में जमा करने के लिए चले गए।

१०

शयन-गृह में हरी बत्ती जल रही है। कमरे की दीवारें नीले रंग से पुती हुई हैं। बत्ती की मंद रोशनी में सारा कमरा एक विचित्र अनुभूति का अनुभव करा रहा है। कमरे में एक तरफ मेज़ पर कुछ पुस्तकें रखी हुई हैं। दूसरी तरफ फूलदान, ऐश-ट्रे, चुरुट का डिब्बा, कलमदान व दवात रखे हुए हैं। कमरे के बीच में एक रोज़वुड की सुन्दर चारपाई है जिसपर डनलप के गद्दे व तकिए लगाए हुए हैं। उसपर मसहरी के भीतर एक विशाल-काय व्यक्ति लेटा हुआ बार-बार करवटें बदल रहा है। उसके मुखमंडल पर कभी हंसी और कभी विषाद की रेखाएं खिचती जा रही हैं। कभी उसपर गहरी झुर्रियां दिखाई देतीं तो कभी एक अनूठी चमक।

रात गहरी होती गई। सारा शहर सुनसान दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे वायु प्रचंड हो खिड़की के पर्दों पर थपेड़े मारने लगी। हवा में एक विचित्र कंपन था, मानो कोई आफतों का मारा अपनी असहनीय व्यथा को रो-रोकर व्यक्त कर रहा हो। वायु के प्रचंड वेग से धक्के खाकर बंगले के सामने स्थित अशोक वृक्ष अपनी घनी टहनियों को फैलाए इस प्रकार झूम रहे हैं मानो अपने विशाल एवं घने केशों को फैलाए नृत्य करनेवाले भूत हों।

बाहरी प्रकृति के उन भयंकर दृश्यों से अनभिज्ञ वो

कमरे के भीतर का वह व्यक्ति खुर्राटे लेता गहरी निद्रा में निमग्न है।

किसीके दरवाजे खटखटाने की आवाज़ हुई। सोनेवाला व्यक्ति जाग पड़ा। अव भी दरवाजे पर कोई दस्तक दे रहा था। बिस्तर पर पड़े-पड़े आंखें मूंदे उस व्यक्ति ने पूछा—"कौन है?"

वाहर से कोई जवाव नहीं आया। उस व्यक्ति ने फिर से पुकारा। इस वार भी कोई उत्तर नहीं मिला। लेकिन आवाज़ जारी थी। कोई उपाय न पाकर वह व्यक्ति बड़े आलस्य से अंगड़ाइयां लेते हुए उठ बैठा और भारी कदमों को वढ़ाते हुए दरवाजे के निकट पहुंचकर द्वार खोला। सामने कोई व्यक्ति न था। इधर-उधर झांककर देखा। लेकिन कोई दिखाई नहीं दिया। कोई आहट पाकर सामने देखा, तो चार-पांच फुट की दूरी पर कोई गहरी छाया हिलती-सी नज़र आई। व्यक्ति कांप उठा। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो गया। उसके मुंह पर भय की रेखाएं खिंच गईं। वह रोमांचित हो उठा।

ठीक उसी समय उसकी पीठ पर कोई शीतल स्पर्श हुआ। घूमकर देखा पीछे कोई नहीं था। वह घवराया। चिल्लाना ही चाहता था कि किसीने अपने हाथों से उसका मुंह वन्द किया। इस वार उसके सभी अवयव भय से कांपने लगे। ऐसा

मालूम होता था कि उसका दिल जोर से धड़क रहा है। चार-पांच मिनट यही हालत रही तो उसके दिल की धड़कन ही बन्द हो जाएगी।

"घबराते क्यों हो ? मैं हूं तुम्हारा मित्र।"

"तुम ! कौन हो तुम ? मुझे दिखाई नहीं देते ?"

"इतनी जल्दी भूल गए ? हां, आदमी के दूर होते ही लोग भूल जाते हैं। यही दुनिया की परिपाटी है।"

वह व्यक्ति चकित रहगया। सामनेवाले व्यक्ति का कंठ-स्वर तो उसे चिरपरिचित-सा प्रतीत हो रहा है। वह उस आगन्तुक व्यक्ति से बोल उठा—"तुम दिखाई क्यों नहीं देते ? मैं कैसे तुम्हें पहचान लूं ?"

"भीतर चलो, मैं बताऊंगा, कौन हूं। तुमसे कुछ ज़रूरी बातें करने आया हूं।"—यह कहते ही उस आगन्तुक ने उस व्यक्ति की गर्दन पर हाथ डालकर ढकेल दिया। वह धम्म से चारा पाई पर गिर पड़ा। आगन्तुक ने कमरे के भीतर प्रवेश करके दरवाजा बन्द कर दिया और चारपाई पर बैठ गया।

वह व्यक्ति और भी डरा हुआ सा मालूम हो रहा था। इस-लिए आगन्तुक ने उसकी पीठ पर अपना शीतल हाथ फेरते हुए कहा—"मैं सोमनाथ हूं। डरते क्यों हो, दीनदयाल ! तुम मुझे देखकर कभी डरते नहीं थे। बहुत ख़ुश हो जाते थे।"

सोमनाथ का नाम सुनकर दीनदयाल एकदम उछल पड़ा। घबराए हुए कंठ से उसने पूछा—"तुम तो कभी के मर गए हो।

बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, इसलिए मैं तुमसे यही चाहता हूं कि मेरे बच्चों को इस दुनिया में उचित मार्गदर्शन अवश्य करो।"

"बच्चों के व्यक्तित्व को कोई बना नहीं सकता, क्योंकि व्यक्ति अपनी साधना एवं संकल्प से ही अपने व्यक्तित्व को बना लेता है। दूसरे लोग चाहे वे जितने ही आदर्श पुरुष क्यों न हों अन्यों के व्यक्तित्व के बनाने में सहायक-मात्र हो सकते हैं। मैं अपनी शक्ति-भर अवश्य उन्हें सहायता देने का प्रयत्न करूंगा।"

ये शब्द दीनदयाल कह ही रहे थे कि कमरे में एक वात्या-चक्र के उठने का सा अनुभव हुआ और दूसरे ही क्षण कोई लंबी छाया ऊपर उठती-सी नज़र आई। दीनदयाल एकटक उसकी तरफ देखता ही रहा।

प्रचण्ड वायु के झोंकों ने कमरे की दीवारों पर लटकनेवाली तस्वीरों का आलोड़न किया। उस प्रहार से एक तस्वीर, जिसका फ्रेम लगा था, ज़ोर से नीचे गिरी। शीशे के फूटने से बड़ी आवाज़ आई।

चौंककर हड़बड़ाते दीनदयाल जाग उठा। सहमी हुई आंखों से कमरे के चारों तरफ अर्थभरी दृष्टि से देखा। उसे कहीं कुछ नहीं दिखाई दिया। केवल फर्श पर शीशे के टुकड़े चारों तरफ बिखरे हुए थे। उन टुकड़ों को देख दीनदयाल के

मन में न जाने असंख्य प्रकार की भाव-तरंगें कल्लोल करने लगीं।

उसे लगा कि यह जीवन भी कैसा विचित्र है। मनुष्य अपने इस शरीर को सुखी बनाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न और परिश्रम करता है। लेकिन मानव का शरीर भी एक दिन, जिस तरह फ्रेम में जड़वाए हुए चित्र व शीशे नीचे गिरने से फूट-फूटकर टुकड़ों में फैल जाते हैं वैसे ही, मिट्टी में मिलकर नाम मात्रावशिष्ट रह जाता है।

शीशे के फूटने से पहले उसमें जो चमक-दमक तथा तस्वीर की शोभा को बढ़ाने की जो क्षमता होती है वही मानव-शरीर में विद्यमान है। मानव अपने शरीर के पोषण के लिए नाना प्रकार के अत्याचार व अन्याय भी करता है। समाज में प्रतिष्ठा पाने के हेतु वह अनेक षड्यंत्र रचता है। इसी शरीर को लेकर व्यक्ति अपने में राग-द्वेष, स्नेह-संताप, सुख-दुःख, अभिमान-अपमान आदि भावनाओं को प्रश्रय देती है। इनके पोषण के हेतु कभी-कभी व्यक्ति अपने माता-पिता भाई-बहन, बन्धु-मित्र व समाज-संसार की भी परवाह नहीं करता है। जहां व्यक्ति के स्वार्थ का प्रश्न आ उपस्थित होता है, वहां पर वह इतना स्वार्थी और संकुचित स्वभाववाला हो जाता है कि उस समय वह यह नहीं देखता, उसके व्यवहार से अन्य व्यक्तियों पर क्या बीतता है, उनके हृदय क्षोभ से कैसे आंदोलित होते हैं। जहां पर व्यक्ति स्वार्थ के परे होता

है, वहां पर वह इतना ऊपर उठता है कि साधारण मानव की दृष्टि में वह असाधारण व्यक्तित्व को लिए प्रशंसा का पात्र हो जाता है। आखिर यह विषमता क्यों ?

इन बातों पर विचार करते-करते दीनदयाल को अपने भूत-कालीन जीवन का स्मरण आया। वह यह सोचने लगा कि जज के पद से अवकाश प्राप्त करने के पहले समाज में उसका क्या स्थान था और आज क्या है? समाज-रचना और कानून के निर्माण पर उसे आश्चर्य हुआ। सरकार-रूपी जो यंत्र-रचना है, उसका विधान क्यों इतना कठिन और अव्यावहारिक है ? आखिर सरकार क्या चीज़ होती है, जिसकी लाठी के सामने बड़े मेधावी झुकते, उसकी व्यवस्था का पालन करते हैं। राज्य यंत्रांग का न्यायविधान भी कैसा विचित्र है। वह भी न्याय-यंत्र का एक पुर्ज़ा था। अपराधियों के न्यायालयों का फैसला देनेवाला वह विधाता था। न्याय की तुला के संतुलन का उत्तर-दायित्व अपने कंधों पर लिए समाज में वह आज तक न्याया-धीश के नाम से पूजा जाता था। उस पद के लिए वास्तव में वह योग्य है अथवा नहीं, स्वयं वही जान नहीं पाया। हां, सरकार द्वारा निर्धारित कानूनी शिक्षा का अवश्य उसने अध्ययन किया था। क्या इतने मात्र से ही अपराधियों की जान लेने व बख्श देने का अधिकार दिया जाता था ?

जब वह जज था, उसने कई निरपराधियों को फांसी की सजा दी थी। कई अपराधियों को निरपराधी घोषित कर

मुक्त किया था। अधिकार के मोह में वह इन बातों पर ध्यान नहीं दे सका। लेकिन आज ठंडे दिमाग से सोचने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसने जो कुछ किया था वह उसका कर्तव्य नहीं बल्कि अधिकार का दुरुपयोग था।

एक बार की घटना है। दीनदयाल के भाई ने अपने कारखाने के किसी कर्मचारी को गुस्से में आकर मार डाला था। कानून की दृष्टि से उसका भाई हत्यारा था। लेकिन उसने कानून की आड़ से अपने भाई को बचाया था। उस कर्मचारी के पिता ने न्यायाधीश के घर पहुंचकर न्याय की भीख मांगी थी। लेकिन दीनदयाल टस से मस न हुआ था। उल्टे दुत्कारकर नौकरों से गर्दन पर हाथ डलवाकर बाहर निकलवाया था। उस कर्मचारी के पिता ने अपने लड़के की मौत का हरजाना दिलवाने की मिन्नत की थी। लेकिन सहानुभूतिपूर्वक सुनने की सहनशीलता उस वक्त उसमें नहीं थी। ऊंचे समाजों में जाना, प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखना उसकी दृष्टि में बड़प्पन का निशान था। लेकिन उस वक्त वह यह नहीं जान पाया कि व्यक्ति का बड़प्पन उसके धन में है, पद में है, प्रतिष्ठा में है, अथवा चरित्र में ?

इन सबका कारण शायद यह हो सकता है कि वह अपने को कानून का संरक्षक मानता था, जिस कानून के सम्बन्ध में मानव स्वयं गफलत में पड़ा हुआ है। न्याय का पक्ष ले कानून के अनुसार जज अपराधी को दंड देता है।

है, वहां पर वह इतना ऊपर उठता है कि साधारण मानव की दृष्टि में वह असाधारण व्यक्तित्व को लिए प्रशंसा का पात्र हो जाता है। आखिर यह विषमता क्यों ?

इन बातों पर विचार करते-करते दीनदयाल को अपने भूत-कालीन जीवन का स्मरण आया। वह यह सोचने लगा कि जज के पद से अवकाश प्राप्त करने के पहले समाज में उसका क्या स्थान था और आज क्या है? समाज-रचना और कानून के निर्माण पर उसे आश्चर्य हुआ। सरकार-रूपी जो यंत्र-रचना है, उसका विधान क्यों इतना कठिन और अव्यावहारिक है ? आखिर सरकार क्या चीज़ होती है, जिसकी लाठी के सामने बड़े मेधावी झुकते, उसकी व्यवस्था का पालन करते हैं। राज्य यंत्रांग का न्यायविधान भी कैसा विचित्र है। वह भी न्याय-यंत्र का एक पुर्जा था। अपराधियों के न्यायालयों का फैसला देनेवाला वह विधाता था। न्याय की तुला के संतुलन का उत्तर-दायित्व अपने कंधों पर लिए समाज में वह आज तक न्याया-धीश के नाम से पूजा जाता था। उस पद के लिए वास्तव में वह योग्य है अथवा नहीं, स्वयं वही जान नहीं पाया। हां, सरकार द्वारा निर्धारित कानूनी शिक्षा का अवश्य उसने अध्ययन किया था। क्या इतने मात्र से ही अपराधियों की जान लेने व बख्श देने का अधिकार दिया जाता था ?

जब वह जज था, उसने कई निरपराधियों को फांसी की सज़ा दी थी। कई अपराधियों को निरपराधी घोषित कर

मुक्त किया था। अधिकार के मोह में वह इन बातों पर ध्यान नहीं दे सका। लेकिन आज ठंडे दिमाग से सोचने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसने जो कुछ किया था वह उसका कर्तव्य नहीं बल्कि अधिकार का दुरुपयोग था।

एक बार की घटना है। दीनदयाल के भाई ने अपने कारखाने के किसी कर्मचारी को गुस्से में आकर मार डाला था। कानून की दृष्टि से उसका भाई हत्यारा था। लेकिन उसने कानून की आड़ से अपने भाई को बचाया था। उस कर्मचारी के पिता ने न्यायाधीश के घर पहुंचकर न्याय की भीख मांगी थी। लेकिन दीनदयाल टस से मस न हुआ था। उल्टे दुत्कारकर नौकरों से गर्दन पर हाथ डलवाकर बाहर निकलवाया था। उस कर्मचारी के पिता ने अपने लड़के की मौत का हरजाना दिलवाने की मिन्नत की थी। लेकिन सहानुभूतिपूर्वक सुनने की सहनशीलता उस वक्त उसमें नहीं थीं। ऊंचे समाजों में जाना, प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखना उसकी दृष्टि में बड़प्पन का निशान था। लेकिन उस वक्त वह यह नहीं जान पाया कि व्यक्ति का बड़प्पन उसके धन में है, पद में है, प्रतिष्ठा में है, अथवा चरित्र में ?

इन सबका कारण शायद यह हो सकता है कि वह अपने को कानून का संरक्षक मानता था, जिस कानून के सम्बन्ध में मानव स्वयं गफलत में पड़ा हुआ है। न्याय का पक्ष ले कानून के अनुसार जज अपराधी को दंड देता है।

लेकिन वही अपराधी घूस देकर उस दंड से मुक्त होता है और बेचारा निरपराधी जोकि अवैधानिक रूप से घूस देने का विरोधी है, दंड का भागी बन जाता है। इस प्रकार कानून को बदला जाता है, न्याय की परिभाषा भी बदलती है, अपराधी और निरपराधी भी बदलते हैं।

इन सब बातों पर आज ठंडे दिमाग से और विवेकपूर्वक सोचने पर दीनदयाल को मालूम हुआ कि न्याय के इतिहास में उसका क्या स्थान था। उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि पद पर रहते समय लोग उसके घर के चारों तरफ चक्कर काटते थे और उसकी कृपा का पात्र बनकर सैकड़ों व हज़ारों रुपयों की थैलियां भेंट चढ़ाने में अपने लिए गौरव की बात समझते थे। वे लोग आज उसके घर की तरफ फटकते नहीं और हठात् कहीं बाज़ार में दिखाई देने पर भी सलामी देने से बचने की कोशिश करते हुए खिसक जाते हैं। क्या मानव अधिकार के अभाव में इतना पंगु बन जाता है?

इसी प्रकार प्रत्येक पद में व्यक्तित्व के कितने रूप होते हैं। अधिकार के मद में व्यक्ति जीवन के रंगीन स्वप्न देखता है, उसका दिमाग भी बैरोमीटर की तरह सदा ऊपर चढ़ा रहता है। लेकिन इससे अलग होने पर सबकी सहानुभूति का स्वांग रचता है।

ठीक इसी प्रकार परिवार में पिता अथवा संरक्षक का स्थान होता है। परिवार का हर व्यक्ति अपने कर्तव्य के पालन

में सदा जागरूक नहीं होता बल्कि अपनी दुर्बलताओं और विशिष्टताओं से वह किस प्रकार समाज में अपना पार्ट अदा करता है, यह एक विशिष्टता की बात है। यही मानव की मानसिक विचारधारा का वैशिष्ट्य है।

यह सोचते-सोचते न जाने वह कब गहरी निद्रा में निमग्न हुआ।

११

मद्रास मेडिकल कॉलिज के वुमेन्स होस्टल की दूसरी मंज़िल से सरला अपनी सहेलियों के साथ उतरकर ज्योंही मेन हाल में पहुंची, त्योंही डाकिए ने सरला को मनीआर्डर दिया। फार्म पर हस्ताक्षर करके सरला ने गिनकर रुपये लिए। उसे आज का पूर्वनिश्चित कार्यक्रम याद आया। तुरन्त वह टेलीफोन के पास दौड़कर पहुंची। टेलीफोन का चोंगा हाथ में ले डायल किया। उधर से आवाज़ आई। सरला ने बोलना शुरू किया—

"हलो, सुरेश, तुम्हें याद होगा आज 'प्लाज़ा' में मैटिनी शो 'देवदास' देखने जाना है। अभी दो बजने जा रहा है। टैक्सी लेकर जल्दी आओ।"

टेलीफोन रखकर सरला सुरेश की प्रतीक्षा में मेन फाटक के पास खड़ी रही। थोड़ी देर में सुरेश टैक्सी ले आया।

सरला टैक्सी में जा बैठी। टैक्सी तेज़ी से चलने लगी। धीरे-धीरे जनरल अस्पताल, सेंट्रल स्टेशन, स्टेट ट्रांसपोर्ट, ऐलण्ड ग्राउण्ड्स, राजाजी हाल, हिन्दू आफिस, रौण्डटाना, जनरल पोस्ट आफिस और कास्मोपोलिटन क्लब होते हुए टैक्सी प्लाज़ा थियेटर के सामने जा रुकी। सरला और सुरेश सीधे बालकनी में जा बैठे। न्यूज़-रील के साथ फिल्म शुरू हुई। दोनों उसे देखने में तल्लीन हुए।

बीज अंकुरित हो पौधे का रूप धारण करता है। क्रमशः पौधे पत्तों से पूर्ण हो बढ़ने लगते हैं। एक ही बीज में वृक्ष का विराट रूप भी विद्यमान है, और लता का व्यापक जाल भी। ज्यों-ज्यों ये दोनों बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। लता में कोमलता है, सुकुमारता है, सौन्दर्य है और आत्मसमर्पण की भावना है। वह पराश्रय में ही बढ़ती है। आश्रय के अभाव में वह मुरझा जाती है। धीरे-धीरे विनष्ट होती है, इसलिए उसके लिए वृक्ष का सहारा आवश्यक हो जाता है।

वृक्ष मज़बूत हो, अपनी जड़ें मिट्टी में गहरी जमाकर ऊपर की ओर बढ़ने लगता है। उसे आश्रय की आवश्यकता भले ही न हो किन्तु उस कठोरता के लिए कोमलता और स्नेहपूर्ण शीतलता की आवश्यकता का अनुभव ज़रूर होता है। दोनों स्वभाव से विभिन्न तत्त्व और गुणों से युक्त होने पर भी

तादात्म्य के अनुभव के लिए छटपटाते हैं। दोनों में परस्पर आक-र्षण क्यों है ? यह कोई नहीं बता सकता। प्रकृति की उस विल-क्षणता के सामने ये दोनों परस्पर-विरोधी तत्त्व नतमस्तक हैं। इन तत्त्वों के बीच संघर्ष होता है। दोनों अलग हुए तो फिर मिल जाना असम्भव नहीं, तो कठिन ज़रूर है। किन्तु परस्पर स्नेह-बन्धन में ये दोनों तत्त्व अपनत्व को भूल एकरूपता का अनुभव करते हैं। कौन-सी ऐसी महती शक्ति है जो इन दोनों तत्त्वों को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता रखती है, उसे कोई आकर्षण की संज्ञा देते हैं तो कोई प्रेम या स्नेह।

भावात्मक सम्बन्ध दो समान अवस्था के और समान तत्त्वों के बीच ही तो है। लता को उचित अवसर पर वृक्ष का सहारा प्राप्त नहीं हुआ तो वह ऊपर निश्चिन्त फैल नहीं सकती। फल फूल-रूपी अपनी मधुरता और अपने सौन्दर्य का बोध नहीं करा सकती। ऐसी हालत में उसका उपयोग न और के लिए हो सकता है। और न वह अपने अस्तित्व का गर्व ही कर सकती है। यही आकर्षण सृष्टि के भीतर दो परस्पर-विरोधी किन्तु स्वजातीय तत्त्वों में पाया जाता है।

मानव के भीतर जो आकर्षण है वह पात्र के अनुरूप वात्सल्य स्नेह और प्रेम के नाम से व्यवहृत है। किन्तु यौवन-काल में युवती और युवक के मध्य जो आकर्षण होता है वह प्रेम या प्रणय नाम से जान व मान लिया जाता है।

सरला और सुरेश के बीच यही आकर्षण क्रमशः बढ़ता

हा ! दो व्यक्तियों के बीच आकर्षण तभी होता है जब
नका सान्निध्य होता है। प्रारम्भिक परिचय क्रमशः स्नेह में,
तत्पश्चात् प्रेम में परिणत होता है। प्रेम तो कई प्रकार का
होता है। एक तो विशुद्ध प्रेम होता है जिसमें वासना और स्वार्थ
के लिए स्थान नहीं होता। दूसरा स्वार्थ या वासनापूर्ण होता है।
इसलिए यह कहना मुश्किल है कि सरला और सुरेश के बीच जो
आकर्षण बढ़ता जा रहा है, वह कौन-सा प्रेम है ? किन्तु इतना
निश्चित है कि वे दोनों सदा एक-दूसरे से निकट रहने को
लालायित होते हैं। बार-बार मिलने के अवकाश की तलाश
करते हैं। मित्रमंडली में रहते समय भी वे दोनों वहां से खिसकने
की सोचते हैं। हमेशा दोनों एकान्त में रह सकनेवाली योजना
बनाते हैं।

इन दोनों के आकर्षण का उद्देश्य क्या है ? वे ही स्वयं नहीं
जानते; यौवन के उफान का अल्हड़पन है अथवा स्नेह का परस्पर
बंधन ?

सिनेमा के समाप्त होने की घंटी बजी। सिनेमाघर के
सब दरवाज़े खुल गए। तीन घंटे तक बोलपट में निमग्न
प्रेक्षक एक-एक करके बाहर आने लगे। बालकनी से एक जोड़ी
प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप करते सीढ़ियों से उतरने लगी।
पैदल चलते यह जोड़ी पास में ही स्थित 'मई कॉफ़ी बार
में पहुंची। और 'रुफ़ गार्डन' पर एक कोने की मेज़ पर ज
बैठी।

सन्ध्या की समुद्री ठंडी हवा मद्रास की तप्त गरमी को शीतल बनाने लगी। 'रूफ गार्डन' की लताओं तथा गमलों के पौधों के फूलों से सुगन्धि चारों तरफ फैलने लगी। रेडियोग्राम का सुन्दर संगीत से वह वातावरण अत्यन्त मधुर मालूम होने लगा। सभी लोग अपने वांछित पदार्थों का आर्डर देकर उनका स्वाद लेने में मग्न थे। साथ-साथ वार्तालाप भी चलता रहा। बॉय ने आकर उस जोड़ी को मीनू देते हुए पूछा—

"आपको क्या लाऊं सर ?"

सुरेश ने मीनू देखते हुए दो कटलेट लाने का आदेश दिया। बॉय चला गया।

सरला, जो अब तक मौन थी, बोल उठी—

"सुरेश, फिल्म के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है ?"

सुरेश ने हंसते हुए कहा—"देखो, मैं अपने दिल की बात बतला रहा हूं। क्या नारी 'पार्वती! जैसा त्याग कर सकती है ?"

"यदि देवदास जैसा पुरुष हो तो अवश्य कर सकती है। तुम यह भूल जाते हो कि नारी केवल एक ही बार प्रेम करती है। वह पुरुष को कुछ देना जानती है, बदले में कुछ प्राप्त करने की कभी कामना नहीं रखती है पुरुष की बात. ऐसी नहीं, वह लेना जानता है, देना नहीं।"

"क्यों नहीं, देवदास ने जो महान त्याग किया था वह हम पार्वती में नहीं पाते हैं। पार्वती की शादी हो चुकी थी। चाहे तो देवदास किसी दूसरी लड़की से विवाह करके अपना जीवन

सुखमय वना सकता था। लेकिन उसने पार्वती को अपना हृदय दे दिया था। उसके हृदय में दूसरी नारी के लिए बिलकुल स्थान ही नहीं था। यही कारण है कि वह पार्वती को न पा सकने की हालत में उसे भूलने के लिए मधु का सहारा लेता है। और इस प्रकार उसे भूल जाने की कोशिश करता है। अन्त में इसी प्रेम-यज्ञ की एक समिधा बनकर अपनी इहलीला समाप्त कर लेता है।"

"तुम पार्वती के त्याग को भूल रहे हो। हमारे समाज में नारी विवश है। इसलिए वह जिसे प्रेम करती है उसे पा नहीं पाती। कारण, हमारे समाज के भीतर जाति, धर्म, कुल और भाषा-भेद की जो संकुचित दीवारें हैं, वे जब तक ढह नहीं जाएंगी तब तक नारी इसकी शिकार होती ही रहेगी। आज तो उपर्युक्त भेदों के अलावा अमीर-गरीब, ऊंच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित इत्यादि असंख्य भेद पाए जाते हैं। पार्वती भी इन्हीं भेद-भावों की शिकार हुई। फिर भी वह समाज की मान्यता की रक्षा के लिए अन्तिम समय तक प्रयत्न करती रही।

"वृद्ध के घर में रहते हुए भी देवदास को भूल न सकी। पुरुष अपने प्रेम का परिचय दे तो भी हमारा समाज उतना बुरा नहीं मानता। यह जानते हुए भी कोई उसे अपनी लड़की देने के लिए आगे बढ़ेगा। लेकिन नारी की बात इससे बिलकुल विपरीत है। उसपर एक बार कलंक का धब्बा लगा तो

समझ लो कि उसीकी ज़िन्दगी तबाह हो गई। फिर उससे विवाह करने के लिए कोई भी युवक आगे नहीं बढ़ेगा। "

"ऐसे पुरुष भी हैं जो एक बार किसी को हृदय देते हैं तो उसे अंत तक निभाते भी हैं।"

"मैं यह नहीं कहती कि ऐसा कोई पुरुष नहीं है। मैं यही कहती हूं कि पुरुष धोखा भी दे अथवा धोखा खा जाए तो भी समाज उसका बहिष्कार नहीं करता। ऐसा वैषम्य क्यों है? हमारे हिन्दू समाज में ही यह भिन्नता अधिक देखी जाती है। विदेशों में नारी स्वतन्त्र है। वह अपने वांछनीय वर का चुनाव कर सकती है।"

"यह सब समाज-रचना पर निर्भर है। सामाजिक व्यवस्थाएं भी मानव-निर्मित हैं। पुरुष ही ने वहां पर भी नारी को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की है। आर्थिक दृष्टि से भी उसे स्वावलंबिनी बनाने का अवकाश उसे प्रदान किया है। जब पुरुष यह चाहता है कि उनकी बहन अथवा बेटी या उसकी प्रेमिका को वह स्वतन्त्रता प्राप्त हो जिसका वह उपभोग कर रहा है, तभी वह ऐसी व्यवस्था पर जोर देता है। पाश्चात्य देशों में भी यह अनुभव कर पुरुष ने ऐसी व्यवस्था कायम की है। भारत में क्रमशः ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो सकता है, चाहे कुछ समय क्यों न लग जाए।"

"मैं विश्वास नहीं कर सकती, भारत में ऐसी समाज-रचना कायम होगी। कई शताब्दियों के विकास का परिणाम

है वहां की नारी की स्वतन्त्रता। नारी ने पुरुष को प्रभावित कर—अपनी योग्यता और व्यवहारों से—तथा पुरुष से संघर्ष कर ही अपना अधिकार आप प्राप्त कर लिया है। वरना स्वार्थी पुरुष नारी को कब स्वतन्त्रता देने को तैयार होता ?"

"तुम्हारा सोचना गलत है, संघर्ष का परिणाम सदा अपकार ही होता है। समझौते में ही उपकार संभव है। पुरुष सर्वाधिकारी है। अगर वह नहीं चाहता तो नारी कदापि स्वतन्त्र न हुई होती।"

बहस चल रही थी। 'कटलेट' के साथ आइसक्रीम भी समाप्त हुई। होटल की घड़ी ने सात बजा दिए। सरला और सुरेश का ध्यान भंग हुआ।

होटल का बिल चुकाकार दोनों नीचे आए। माउंट रोड पर होटल के सामने टैक्सी रुकी थी, दोनों जा बैठे। बड़ी तेज़ी के साथ टैक्सी मेडिकल कॉलेज होस्टल की ओर वायु-वेग से दौड़ पड़ी।

१२

मेडिकल कॉलेज के होस्टल के सामने कोलाहल हो रहा है। विद्यार्थी सब छुट्टियों में घर जाने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ लोग अपने मित्रों से विदाई लेने के लिए इधर-उधर

दौड़-धूप कर रहे हैं, कुछ विद्यार्थी बाज़ार में आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए टैक्सियों में जा रहे हैं।

विद्यार्थी-जीवन में विद्याध्ययन का काल प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु है तो छुट्टियों का समय वसंत ऋतु के समान है। पढ़ाई को भूलकर छुट्टियों में ही विद्यार्थी अपना समय खाने-पीने और विनोद में बड़े आनन्द के साथ बिता सकते हैं। अलावा इसके अपने परिवार के लोगों से दूर रहने के कारण उनसे मिलने की उत्कट इच्छा भी उनके दिलों में हिलोरें मारने लगती है। घर पर वे अपने आत्मीयों के सामने अपने सुख-दुःख सम्बन्धी हृदय की गांठें खोलकर परम सुख का अनुभव करते हैं। चाहे घर पर नगर का वातावरण, वहां की सुख-सुविधाएं, वैसा स्वादिष्ट भोजन भले ही प्राप्त न हो फिर भी विद्यार्थी छुट्टियों में अपने घर जाने को लालायित होते हैं। न मालूम परिवार और व्यक्ति के बीच कौन-सा ऐसा कोमल स्नेह-सूत्र इनको बांधे हुए है, कुछ बता सकना कठिन-सा लगता है।

समाज की रचना में परिवार एक इकाई है। व्यक्ति का वैसे तो परिवार में महत्त्व है भी और नहीं भी। वह केवल परिवार का एक अंग है। व्यक्तियों का सम्मिलित रूप ही समाज है। व्यक्ति और परिवार के बीच का चुंबक पारिवारिक व्यवस्था अथवा रचना को प्राण प्रदान कर रहा है। वह गुरुत्वाकर्षण न होता तो आज मानव कदापि 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का सपना

न देखता।

व्यक्ति आखिर परिवार-रूपी छोटी-सी इकाई से क्यों बंधा हुआ है ? उसका पुर्जा क्यों बना हुआ है ? व्यक्ति का हृदय उतना विशाल है कि उसमें सारी मानवता के सुख-दु:ख प्रतिबिंबित होते हैं। फिर भी वह परिवार-रूपी एक संकुचित एवं सूक्ष्म अंश से क्यों बंधा हुआ है ? विश्व की व्यवस्था में सम्भवतः परिवार बुनियादी हो। इतना निश्चित है कि जिस प्रकार ब्रह्मांड के समस्त ग्रह परस्पर आकर्षण के कारण अपने स्थान पर स्थित हो समस्त विश्व का अपने पथ में परिभ्रमण करते हैं वैसे ही व्यक्ति अपने परिवार में आकर्षित हो समस्त प्रदेशों में अपने कर्तव्य के पालन में लगा रहता है। अन्तर इतना ही है, व्यक्ति इसी आकर्षण को लेकर कभी-कभी परिवार में आ जुड़ता है। वैसे तो अलग रहने पर भी उनका नाता भावात्मक रूप में सदा लगा रहता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है, व्यक्ति परिवार से अपना नाता तोड़कर उसे विछिन्न करने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति की मानसिक स्थिति और उसके आचरण पर परिवार का आकर्षण बहुत कुछ निर्भर होता है। किसी एकाध परिवार के विछिन्न होने पर भी सामाजिक व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आता। फिर भी आकर्षण व्यक्ति और परिवार को संतुलित किए रहता है।

विद्यार्थी सब अपनी इकाई से मिलने को आतुर हैं। सरला

ने भी आवश्यक चीज़ें खरीदीं। सामान पैक करके सुरेश की प्रतीक्षा करने लगी। उसने पहले ही तार द्वारा अपने आने की सूचना सुहासिनी को दे दी थी। सुरेश ने सरला को गाड़ी पर चढ़ाकर विदाई ली। गाड़ी की रफ्तार जब तक तेज़ न हुई, तब तक वह प्लेटफार्म पर खड़े रूमाल को हिलाते संकेत करता रहा। सेंट्रल स्टेशन सरला की नज़रों से ओझल हुआ। सरला ने एक गहरी सांस ली। अब उसे अपने परिवार के लोगों से मिलने की एक विचित्र अनुभूति होने लगी। उसका मन अपने एक साल का अनुभव बहन के समक्ष व्यक्त करने को विकल होने लगा। अब वह जी भरके अपनी बहन से बात करेगी। इसी विचार में वह खो गई।

प्रात:काल छ: बजे कलकत्ता मेल विजयवाड़ा के प्लेटफार्म पर आ लगी। सुहासिनी और राजाराम पहले ही से सरला को ले जाने स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहे थे। सरला डिब्बे में दरवाज़े के पास खड़ी रही। उसकी आंखें प्लेटफार्म पर की भीड़ में अपनी बहन को ढूंढ़ने लगीं। सुहासिनी ने अपनी बहन को देखा तो वह उस डिब्बे की ओर दौड़ पड़ी। उसे उस समय इस बात का ख्याल न था कि प्लेटफार्म पर दौड़ना एक नारी के लिए शोभा नहीं देता। दोनों बहनों ने गले लगकर अपना प्यार व्यक्त किया। दोनों दृढ़ आलिंगन में ही मग्न रहीं। पीछे कोई आहट हुई, सरला ने मुड़कर देखा कि राजा-राम प्रसन्न मुख-मुद्रा में उन दोनों बहनों की ओर [illegible]

देख रहा है। उनके नेत्रों में स्नेह का अपूर्व तेज था। सुहासिनी ने सरला को राजाराम का परिचय कराया।

सुहासिनी ने कल्पना की थी कि होस्टल का भोजन करने से सरला दुर्बल हुई होगी। लेकिन सरला को खूब मोटी-तगड़ी देख वह विस्मित हुई। सरला का रंग पहले की अपेक्षा अधिक गोरा, उसकी देह कहीं ज़्यादा चिकनी और उसके कपोल सेब जैसे गोल, सुडौल एवं लाल थे।

सरला को ले सुहासिनी और राजाराम घर पहुंचे। फाटक पर सीतालक्ष्मी ने सरला की नज़र उतारी। उसे बड़े प्यार के साथ भीतर ले गई।

सरला के आगमन से 'शान्ति निलय' में जान आ गई। पहले की अपेक्षा उसकी रौनक कहीं ज़्यादा बढ़ गई। बड़ी देर तक वे सब अपने परिवार-सम्बन्धी वार्तालाप करते रहे। उनमें मुख्यतः राजाराम और सीतालक्ष्मी की कहानी अधि
रही। प्रसंगवश एक-दो वार सोमनाथ की बात भी आई।
सुहासिनी विचलित-सी हुई, लेकिन यह सोचकर उसने संभ
लिया कि सरला पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। परिस्
को गंभीर होते देख सीतालक्ष्मी ने उस प्रसंग को बदलते
कहा—"सरला! तुम दोनों को रामापुर ले जाना चाह
एक-दो दिन यहां बिताकर चले जाएंगे..."

"एकाध महीना यहीं रहो फूफी, फिर हम
सकते हैं।"

"नहीं बेटी ! मुझे आए एक महीने ज़्यादा हो रहा है। मुझे जब मालूम हुआ कि तुम आनेवाली हो, तभी मैं तुम्हें देखने और ले जाने की इच्छा से ठहर गई। आज और कल आराम करो। परसों जाएंगे।"

"अच्छी बात है फूफी। नहीं तो तुम कहां माननेवाली हो?"—सरला हंस पड़ी। उसकी हंसी में और लोगों ने भी साथ दिया।

सीतालक्ष्मी और राजाराम सुहासिनी और सरला के साथ रामापुर पहुंचे। सीतालक्ष्मी ने उनके आतिथ्य की काफी अच्छी तैयारियां कीं। वह सोचने लगी कि दोनों बच्चियां बड़े सुख में पली हैं। अपने घर पर उन्हें किसी चीज़ का अभाव न रहे। उन्हें रामापुर लाने में सीतालक्ष्मी का यह भी उद्देश्य था कि वे अपने पिता को भूल जाएंगी।

सरला को देहाती वातावरण अखरने लगा। होश संभालने के बाद वह देहात कभी नहीं गई थी। उन लोगों को देखने के लिए गांव-भर के लोगों का इकट्ठा होना, उनकी पतली साड़ी व रंगीन चूड़ियों की आलोचना करना, बेसिर के न पहनने पर फिल्म-स्टार कहकर हंसी उड़ाना, बायें हाथ में चूड़ियों के स्थान पर कलाई-घड़ी देख दांतों पर उंगली दबाना आदि सरला को असभ्य और असह्य प्रतीत हुआ।

राजाराम को देहातियों का व्यवहार बहुत बुरा मालूम

होने लगा। उसका दिल इस आशंका से बहुत परेशान था कि कहीं सरला उन देहातियों की करतूतों से रुष्ट न हो जाए। कई बार उसने उन्हें समझाने की कोशिश भी की, लेकिन वे अपनी आदतों से विवश थे। परंपरागत संस्कारों के विरुद्ध शहरी वातावरण और नागरिक जीवन उनकी आलोचना का विषय अवश्य बना। वे रूढ़िवाद के पुजारी हैं। नई विचारधारा का स्वागत करने और उसके अनुकूल अपने को बनाने की चेष्टा वे नहीं करना चाहते।

राजाराम की परेशानी को सरला भांप सकी। देहातियों के व्यवहार पर उसे क्षोभ ज़रूर हुआ। वह उन्हें डांटती भी, परन्तु यह सोचकर वह चुप हो रही कि इससे राजाराम को और भी अधिक मानसिक क्लेश पहुंचेगा। सुहासिनी तो अपनी फूफी को मदद देने में लगी रही।

रामापर में राजाराम ने सरला और सुहासिनी के आतिथ्य में जो तत्परता दिखाई, उन्हें प्रसन्न करने के लिए जो परिश्रम किया और उनके साथ जैसा शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया इन सबसे राजाराम को समझने में दोनों बहनों को अच्छा मौक़ा मिला।

सुहासिनी बड़ी समझदार है। इसीलिए वह परिस्थिति के अनुकूल चलती है। लेकिन सरला उस देहाती वातावरण में खप न सकी।

भोजन का समय हुआ देख सीतालक्ष्मी ने सरला से स्नान

करने के लिए कहा। सरला पिछवाड़े में गई। देखा वहां कोई स्नानागार नहीं है। उसने आश्चर्य से पूछा—"फूफी, स्नानागार कहां है?"

"बेटी, देहात में शहर की भांति अलग स्नानागार नहीं होते चारपाई वहां खड़ी कर दी गई है। उसपर साड़ी डाल दो। वहीं बाल्टी में गरम पानी रखा हुआ है। चारपाई की आड़ में नहाओ।"

पहले सरला सकुचाई। उसे खीज हुई। लेकिन कोई दूसरा चारा न देख जैसे-तैसे नहा ली। खाने का बुलावा आया, तो देखती है कि वहां पर न मेज़ है और न कुर्सी; छुरी-कांटे की बात तो दूर रही। पुरानी चटाई पड़ी हुई थी, जिसपर आध इंच मोटी धूल जमी हुई थी। उसे घृणा हुई। नाक-भौं सिकोड़ते हुए चार कौर निगल लिया मानो कोई कड़वी दवा हो। आराम करने की इच्छा हुई तो अपनी फूफी से पूछा—"फूफी, सोने का कमरा कहां है?"

"बेटी, देहात में हाल ही सोने का कमरा होता है।"

"तो सबके सामने कैसे सोया जाता है?"

"हम सब भोजन करके बरामदे में जाएंगी, तुम [illegible] करना।"

सरला ने सोचा कि यह वन-वे ट्रैफिक [illegible] है। वहां बिजली की बत्ती नहीं थी, न पंखा ही [illegible] और न पार्क।

बड़ी मुश्किल से सरला ने रामापुर में कुछ दिन बिताए। जब विजयवाड़ा लौटने की खबर उसके कानों में पड़ी तो उसने ऐसा अनुभव किया मानो वह नरक-कूप से मुक्त होकर स्वर्ग में जा रही हो।

१३

सरला की छुट्टियां रामापुर और विजयवाड़ा में बड़े मजे में बीत गईं। अपने आत्मीयों से मिलने और आराम करने का उसे यह अच्छा मौका मिला था। फिर मद्रास जाने में पहले उसे कुछ कठिन-सा मालूम हुआ। लेकिन सुरेश के स्मरण-मात्र से उसके मन में एक प्रकार की बेचैनी पैदा हुई। निर्णीत समय पर मद्रास पहुंची।

विजयवाड़ा में 'शान्ति निलय' में सरला के आगमन से रौनक आ गई थी। सदा हंसी-खुशी और आनन्द छाया रहता था। अपने आदमियों के निकट रहने से मानव स्वभावतः जिस प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है वह अवर्णनीय होता है। इस अव्यक्त प्रसन्नता में कितने दिन और कैसे जल्दी बीत गए, कुछ कहना कठिन है। सरला के मद्रास जाने से सुहासिनी एकान्तता का अनुभव करने लगी। वह हमेशा खोई हुई तथा चिन्तित दिखाई देने लगी। शंकरन नायर यह

भांप पाया। इसलिए वह सुहासिनी को प्रसन्न रखने के लि
अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर खिलाता और मीठी कहानिय
सुनाता। वह खुद मां बनकर सुहासिनी को अत्यन्त वात्सल
भाव से देखता। यद्यपि वह पुरुष था, लेकिन उसमें मातृत्व क
भावना कूट-कूटकर भरी थी। इसीलिए वह उस परिवार के
भीतर इस तरह मिल गया था कि देखनेवाले भी उसे पराय
न मानते ; बल्कि उन बच्चों का दादा या नाना समझते।

एक दिन दोपहर के समय सुहासिनी बहुत चिन्तित दिखा
दी। शायद उसे अपनी बहन की याद आई थी। नायर ने बड़े
प्रेम से सुहासिनी को भोजन के लिए बुलाया और मेज़ पर सारी
चीज़ें परोसने लगा। सुहासिनी मौन बैठी थी। भोजन करने की
उसकी इच्छा नहीं थी। लेकिन वह यह सोचकर अनिच्छा से
भोजन करने लगी कि वह नहीं खाएगी तो नायर दुःखी होगा
और वह भी नहीं खाएगा।

नायर ने सकुचाते हुए कहा—"बेटी, मैं कब से इस घर
में रहता हूं, जानती हो ?"

"मैं कुछ ठीक बता नहीं सकती।"

"तुम्हारे दादा के ज़माने से मैं इस घर में रह रहा हूं। जब
तुम्हारे पिता दस साल के थे तभी मैं आया था। यह भी तुम
जानती हो ?"

"हां दादा, जानती हूं।"

"कैसे ?"

"जब-तब मेरी माता और मेरे पिता कहा करते थे कि तुमने हमारे परिवार की बहुत मदद और सेवा की है।"

"बेटी, मेरी उम्र क्या है, जानती हो।"

"नहीं तो।"

"अब मैं करीब साठ साल का हो गया हूं। पहले की तरह मैं काम भी नहीं कर पाता हूं। तुम बुरा न मानोगी तो तुमसे एक बात कहना चाहता हूं।"—गद्गद कंठ से नायर ने कहा।

सुहासिनी ने नायर की ओर देखा, उसकी आंखों में आंसू छलक रहे थे। उसने विकल होकर पूछा—"क्यों दादा! क्या हुआ? तुम रोते क्यों हो?"

"कुछ नहीं बेटी, कुछ नहीं…"—आंसू पोंछते हुए नायर ने कहा।

"नहीं दादा, मुझसे छिपाते हो। मैंने आज तक तुम्हें रोते नहीं देखा। कोई कारण होगा।"

"नायर के होंठ फड़क रहे थे। उसके गले में कंपन था। वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन बोल नहीं फूटते थे। उसके हृदय में कोई बड़ा तूफान मचा हुआ था किन्तु वह उसे व्यक्त नहीं कर पाता था। उसके हृदय के भीतर होनेवाले मानसिक संघर्ष को सुहासिनी जान नहीं पाई।

सुहासिनी का चित्त विकल हुआ। उसने रोनी सूरत बनाकर उद्विग्नता से पूछा—"दादा बताओ, मेरे सामने

क्यों छिपाते हो ? न कहोगे तो मेरी कसम।"

नायर विचलित हो उठा। उसका सारा शरीर कांप गया। गहरी सांस लेते हुए नायर ने वेदना-भरे कंठ से कहा—"बेटी, अब मेरी उम्र ढल गई है। मेरी ताकत भी जवाब दे चुकी है। आंखों से भी साफ दिखाई नहीं देता है।"

"तो ?"

"मैं चाहता हूं, मैं आराम करूं।"

"तुम आराम जरूर कर सकते हो दादा। मैं दूसरा रसोइया रखूंगी। तुम केवल बगीचे का काम देख लो।"'

"नहीं बेटी, आगे मेरे रहने से तुमको तकलीफ होगी।"

"मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी, दादा। तुम्हारे न रहने से मैं पागल हो जाऊंगी। कोई बड़ा व्यक्ति न रहे तो कैसे यह सब संभाल पाऊंगी ?"

"तुम तो बड़ी अक्लमंद हो। सब संभाल सकती हो। मुझे तो अब अपने घर जाना है।"

"आखिर तुम्हारे वहां है कौन ?"

"क्यों नहीं ? मेरे भाई हैं, बहनें हैं, उनके पुत्र हैं। बुढ़ापे में कुछ समय उन लोगों के बीच बिताकर मैं वहीं अपना शरीर छोड़ना चाहता हूं।"

यह सुनते ही सुहासिनी खिन्न हुई। वह सिसकती रही। नायर ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटी, रोती क्यों हो ? तुम्हारे रोने से मुझे भी दुःख होगा। क्या तुम अपने दादा को

ाना चाहती हो ?"

"नहीं दादा, तुम हमें छोड़कर जा रहे हो। हम कैसे रह कती हैं ?"

"तुम समझदार हो वेटी, तुम्हें ज़्यादा वताने की ज़रूरत नहीं। अव मेरे यहां रहने से तुमको कई तकलीफें होंगी।। यह सव सोचकर ही मैंने जाने का निर्णय किया है। वुढ़ापे में मैं तुम्हारे लिए वोझ नहीं वनना चाहता हूं। वरना जाने की मेरी भी इच्छा नहीं थी। जहां भी रहूंगा तुम लोगों की शुभ कामना करता रहूंगा ?"

"तो मैं इस घर में अकेली कैसे रह सकती हूं?"

"तुमको अकेली रहने की कोई ज़रूरत नहीं। अकेले रहना भी नहीं चाहिए। मैं सीतालक्ष्मी के पांवों पर पड़कर उन्हें और राजाराम को यहां ले आऊंगा। कोई पराये नहीं। अलावा इसके, पारिवारिक मामलों में सीतालक्ष्मी वहुत कुशल है। उसके रहने से तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी।"

वड़ी मुश्किल से समझा-वुझाकर आखिर नायर ने सुहासिनी को मनाया। सुहासिनी को अपने वचपन के दिन याद आए। वह नायर की ममता-भरे जलनिधि में गोते लगाने लगी। नायर की विश्वासपात्रता और उसकी हालत जानकर सुहासिनी ने कुछ प्रतिरोध नहीं किया।

एक दिन नायर रामापुर गया। सीतालक्ष्मी और राजाराम को वास्तविक स्थिति का परिचय कराकर उन्हें

विजयवाड़ा में रहने के लिए राज़ी किया। वे तीनों विजयवाड़ा पहुंचे।

नायर ने अपने भाइयों के पास मद्रास जाने की सारी तैयारियां कीं। उसने अब तक अपना खर्च निकालकर जो कुछ बचाया था उन तीन हज़ार रुपयों को सुहासिनी से लिया। सबसे विदा लेकर घर से निकल पड़ा। सीतालक्ष्मी की आंखों में आंसू आ गए। सुहासिनी तो तब तक रोती रही जब तक नायर फाटक से बाहर नहीं गया। वह निर्निमेष नेत्रों से देखती रही। नायर धीरे-धीरे उसकी आंखों से ओझल हो गया।

१४

जनरल अस्पताल आने-जानेवाले रोगियों से खचाखच भरा हुआ था। आउट पेशेण्ट वार्ड में रोगियों की कतार लगी थी। एक-एक करके रोगी काउण्टर के पास जाता, अपनी बीमारी का हाल बताकर चिट लेता और उस चिट पर अंकित वार्ड में चला जाता।

एक बूढ़ा काउंटर के पास चिट ले दसवें वार्ड में पहुंचा। वहां पर रोगी पंक्तिबद्ध हो बेंच पर बैठे हुए थे। एक-एक को डाक्टर बुलाता, जांच करके एक नुस्खा देता। नुस्खा लेकर

रोगी दावा लेने चला जाता। जांच करनेवाले डाक्टरों के पास मेडिकल कालेज में प्रशिक्षण पानेवाले विद्यार्थी और विद्यार्थिनियां बीमारियों का निरीक्षण कर रहे थे। और कभी-कभी अपने सन्देहों का निवारण भी कर लिया करते थे।

एक विद्यार्थी को देख बेंच पर बैठे हुए बूढ़े की वांछें खिल गईं। उसकी आंखें अपूर्व स्नेह से दमक उठीं। बहुत दिनों के बाद उसने उस लड़की को देखा था। एक छलांग में उसके पास पहुंचकर वह कुछ कहना चाहता था। लेकिन यह सोचकर कि अन्य डाक्टरों के सामने उससे बात करना अच्छा न होगा, वह चुपचाप उसकी तरफ देखता ही रहा। वह मन में सोचने लगा कि यदि वह उसे देख लेगी तो ज़रूर कुशल-प्रश्न करेगी। थोड़ी देर के बाद एक युवक आया और उस युवती से हंस-हंसकर बातें करने लगा। बूढ़े को बहुत बुरा मालूम हुआ और वह आंसू पीकर रह गया।

धीरे-धीरे उसकी बारी आई। बूढ़ा डाक्टर के पास जाकर बेंच पर बैठ गया। डाक्टर ने उसकी परीक्षा की। वह युवक भी बीच-बीच में बूढ़े की बीमारी का हाल 'नोट' करता गया। बूढ़े ने युवक को ध्यान से देखा। वह उसके लिए बिलकुल अपरिचित था। नुस्खा लेकर बूढ़ा चला गया।

एक सप्ताह बीत गया।

संध्या के समय एक युवती और एक युवक समुद्र के किनारे

जल से थोड़ी दूर पर बैठे वार्तालाप में इस प्रकार निमग्न थे, मानो दुनिया से उनका कोई नाता न हो। युवती युवक की गोद में सिर रखे उसकी मदभरी आंखों में निहारती थी। युवक युवती के गाल पर चिकोटी काटने लगा। युवती खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसके वसन अस्त-व्यस्त थे। उसकी नाइलोन की चोली के भीतर से उसके अवयव साफ दिखाई दे रहे थे। युवती के केश बिखरे और उसमें गुंथे फूल दबकर मुरझा गए थे। उसकी आंखों में वासना भरी हुई थी और देखनेवाले की कामुकता को उभाड़ने में समर्थ थी।

हठात् ज़ोर की हंसी गूंज उठी। उधर से निकलनेवाले बूढ़े की दृष्टि उस जोड़ी पर पड़ी। बूढ़े का माथा ठनका। आपाद-मस्तक वह कांप उठा। वह अपनी आंखों पर यकीन नहीं कर सका। उसके नेत्र गीले हो गए। वहां वह एक क्षण भी ठहर नहीं सका। विक्षुब्ध हो उसने अपनी आंखें दोनों हाथों से बन्द कीं। कब वह पीछे घूम पड़ा और कब उसके पैर उसे घसीटकर घर ले आए, उसे ज्ञात नहीं। उसका पोता आकर जब उसके पैरों से लिपट गया तब उसे वास्तविक स्थिति मालूम हुई।

बूढ़ा अपने भाइयों के साथ ट्रिप्लिकेन में रहता था, जो एकदम समुद्र के किनारे पर बसा मुहल्ला है। वह रोज़ हवा खाने के लिए समुद्र के किनारे जाता, दो-तीन घंटे बैठकर वापस चला आता। कभी-कभी अपने पोतों को साथ ले [illegible]

पर पहुंचता, उन्हें खिलाते हुए अपना समय बिताता। प्रतिदिन 'बीच' जाने की उसकी आदत-सी लग गई।

कुछ दिन और बीत गए।

'ओडियन' थियेटर के सामने प्रेक्षकों की भीड़ लगी हुई थी। दस आने के टिकटघर के सामने जो लम्बी कतार थी उसमें सबसे पीछे एक बूढ़ा खड़ा हुआ था। धीरे-धीरे कतार कम होती जा रही थी। बूढ़ा टिकट लेने को बड़ा आतुर था। 'मदर इंडिया' देखने की उसकी बड़ी इच्छा थी। आज उस इच्छा की पूर्ति होते देख वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न था। उसके पोतों ने उस पिक्चर की कहानी सुनाई थी। उसे एक बार स्मरण करते उसकी कथा में वह खो-सा गया था। उसके आगे की कतार करीब-करीब टिकटघर के निकट पहुंच गई थी। बूढ़ा वहीं पर खड़ा रहा, जहां पहले था।

पीछे हॉर्न की आवाज़ सुनाई दी तो वह चौंककर कुछ आगे बढ़ा और टैक्सी की ओर दृष्टि दौड़ाई। देखा, वही युवती और युवक टैक्सी से उतरकर एक-दूसरे का हाथ पकड़े थियेटर की तरफ बढ़ रहे हैं। बूढ़ा बहुत परेशान हुआ। उसके दिल में खलबली मच गई। वह मूर्तिवत् खड़े रहकर उनकी तरफ देखता ही रहा।

ड्राइवर के शब्दों ने उसका ध्यान भंग किया। वह डांट रहा था—"ऐ बूढ़े, क्या तुम टैक्सी के नीचे आकर मरना चाहते

हो ? तुम्हारी आंखें न हों तो क्या कान भी नहीं हैं ?"

बूढ़े ने बड़े व्यथित स्वर में कहा—"टैक्सी के नीचे आ जाता तो अच्छा होता भाई, ये दुर्दिन देखने क्यों पड़ते ?"

बूढ़े की ज़िन्दगी पर विरक्ति देख ड्राइवर हंसता हुआ टैक्सी ले वहां से चला गया।

बूढ़ा टिकट लेकर थियेटर में पहुंचा। उसके दिल में आंधी उठी हुई थी।

"बेटी !

तुम्हें यह चिट्ठी लिखते मेरा दिल फटा जा रहा है। मेरी आंखें अश्रुवर्षा कर रही हैं। यह पढ़कर तुम्हारा मन भी व्याकुल होगा। मैं तुम्हें दुःख पहुंचाना नहीं चाहता था। लेकिन विवश हूं।

मैंने यहां कुछ ऐसी घटनाएं अपनी आंखों से देखीं जिनका बयान नहीं कर सकता। यदि मैं उन सबका वर्णन करूं तो शायद तुम विश्वास नहीं करोगी। फिर भी उनका परिचय देना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूं।

वास्तव में उन घटनाओं का उल्लेख करने में [illegible] से मैं दबा जा रहा हूं। मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरे [illegible] के रहते मुझे ऐसे अप्रिय एवं कटु सत्य का परिचय [illegible] लेकिन परिस्थिति विषम होती जा रही है। [illegible] संभालें तो रहा-सहा अवकाश भी [illegible]

पछताने से कुछ हाथ न लगेगा।

विशेष कुछ लिखने में मैं असमर्थ हूं। साहस करके मैं तुम्हारे सामने सच्ची बात खोलकर रख रहा हूं। सरला एक युवक के झूठे प्रेमजाल में फंसकर अविवेकपूर्ण व्यवहार कर रही है। तुरंत यहां आकर उचित व्यवस्था न करोगी तो हमारी नाक कट जाएगी।

यह अप्रिय समाचार देने में मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। आशा है, तुम मुझे क्षमा करोगी।

तुम्हारा बूढ़ा दादा,
शंकरन नायर"

पत्र पढ़कर सुहासिनी का दिल कांप उठा। वह अपने दुःख के आवेश को रोक नहीं सकी। ऐसा लगा कि उसकी कल्पना के महल उसीकी आंखों के सामने धराशायी हो रहे हों। उसने अपनी बहन के सम्बन्ध में जो कुछ सोचा था, इस घटना के द्वारा उसके पूरा होने की आशा जाती रही। वह विक्षुब्ध हो उठी। उसके हाथ से पत्र छूट गया। पंखे की हवा से पत्र इधर-उधर उड़-उड़कर दीवार और कुर्सियों से टकराने लगा। उससे सुहासिनी को ऐसा मालूम हुआ कि नारी भी यदि अपने स्थान से फिसल जाती है तो समाज में उसे भी इस पत्र की तरह ठोकरें खानी पड़ती हैं।

सुहासिनी कुछ बोल नहीं सकी। शर्म के मारे वह गड़ी जा रही थी। इतने में सीतालक्ष्मी ने उस चिट्ठी को लेकर

पड़ा। उनके रुदन से 'शांति निलय' का सारा वातावरण अशांत हो उठा।

१५

मेडिकल कॉलिज के वुमेन होस्टल के प्रतीक्षालय में सुहासिनी और सीतालक्ष्मी बैठी हुई थीं। उन्होंने दर्यापत किया तो मालूम हुआ कि सरला बाहर गई हुई है। इतने में बाहर टैक्सी के रुकने की आवाज़ हुई। सुहासिनी और सीतालक्ष्मी ने खिड़की से बाहर देखा। टैक्सी से एक युवक और एक युवती उतर पड़े। युवक उस युवती से हाथ मिलाकर टैक्सी में वापस चला गया।

इस दृश्य को देखते ही सुहासिनी के क्रोध का पारा चढ़ गया। उसका नारीत्व फुफकार कर उठा। उसका चेहरा लाल हो गया। सीतालक्ष्मी सुहासिनी की मुखमुद्रा देख घबरा गई कि गुस्से में आकर वह कुछ कर न बैठे। उसे समझाया कि जल्दबाजी में आकर कुछ करना या कहना उचित नहीं।

सरला को प्रतीक्षालय से गुजरते देख सीतालक्ष्मी ने पुकारा। किसी परिचित कंठ को सुन सरला ने मुड़कर देखा तो उसके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकती नजर आई। उसका मुखमंडल विवर्ण हो गया। उसका दिल ज़ोर से धड़कने

लगा। किसी अनहोनी बात की कल्पना कर वह रोमांचित हो उठी। घबराई हुई सी उनके निकट पहुंचकर मूर्तिवत् खड़ी रही।

सबके हृदय स्तब्ध थे। जल्दी ही सचेत होकर सरला ने पूछा, "आने के पहले चिट्ठी लिख देतीं ?......"

बात काटते हुए सीतालक्ष्मी बोली—"एक जरूरी काम आ पड़ा। तुम्हें चिट्ठी लिखने का समय भी नहीं था। कमरे में चलो वहीं बात कर लेंगी।" सरला दोनों को साथ लेकर अपने कमरे में पहुंची।

सरला ने कॉफी मंगवाई। सुहासिनी कॉफी तो पी रही थी, लेकिन उसका मन बेचैन था। उस समस्या का हल ढूंढने में वह व्याकुल थी।

कुशल-प्रश्न के अनंतर सीतालक्ष्मी पूछ बैठी—"तुम कहां गई थीं ?"

"सिनेमा देखने।"

"वह युवक कौन है ?"

यह प्रश्न पूछते ही सरला के हृदय पर तीर-सा लगा। वह छटपटाई। कुछ बोल न पाई।

"कहो, बोलती क्यों नहीं ? तुम्हारे साथ टैक्सी में जो युवक आया था, वह कौन है ?"—सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"वह मेरा मित्र सुरेश है"—सकुचाते हुए सरला बोली।

"पराये पुरुष के साथ सिनेमा जाने में तुम्हें लज्जा नहीं

आती ?"

"इसमें लज्जा की क्या बात है ?"

"अविवाहिता होकर, अन्य के साथ घूमना लज्जा की बात नहीं है ?"

"यहां तो कई विद्यार्थिनियां पुरुषों के साथ सिनेमा देखने और टहलने के लिए भी जाती हैं। कोई बुरा नहीं मानता।"

सुहासिनी गरजकर बोली—"चुप रहो, बकवास मत करो। कौन बुरा नहीं समझता ? दुनिया अंधी नहीं है। लाज-शर्म बेचकर फिर अपनी काली करतूतों का समर्थन करने की हिम्मत करती हो ? बेहया कहीं की।"

सरला की आंखें चुंधिया गईं। वह अपनी बहन की मुखमुद्रा को देख नहीं पाई। उसने कभी भी सुहासिनी के इस रौद्र रूप को नहीं देखा था। आज क्यों वह इतनी क्रुद्ध है ? उसका मन क्यों इतना अशांत है ? अपने मन में तरह-तरह की विकृत कल्पनाएं कर वह क्यों विक्षुब्ध हो उठी है !

उसे सुहासिनी का निर्मल प्रेम याद आया। जब कभी वह रूठती थी तो छाती से लगाकर सुहासिनी घंटों उसे समझा-बुझाकर मनाती थी। यदि वह खाना नहीं खाती तो वह भी उपवास करती। बचपन से दोनों कभी अलग नहीं हुई थीं। एकसाथ खातीं और एक ही पलंग पर सोतीं। उसके प्रति सुहासिनी के मन में कैसा स्नेह का समुद्र उमड़ता था। वह लाख बुराइयां करे, खुशी से सुहासिनी उन्हें माफ

करती थी। माता-पिता के सामने भी उसका पक्ष लेकर कई बार उसे बचाया था। वह किसी भी चीज़ की मांग करती और पाने के लिए मचलती तो वह तुरन्त मंगवा देती थी। उसके लिए सुहासिनी ने जो कुछ त्याग किया था, वह कोई पिता भी न कर पाता।

आज सुहासिनी के दूसरे रूप को देख सरला स्तंभित हो उठी। सरला के मुखमंडल पर वेदना की रेखाएं खिंच गईं। उसके हृदय में तूफान उठा था।

"जवाब क्यों नहीं देतीं?"—सरला को मौन देखकर सुहासिनी ने डांटा।

"इसमें मैं कोई बुराई नहीं देखती।"—सरला हिम्मत कर बोली।

"तुम बुराई कहां देख पाओगी? कामला रोगी को सारी दुनिया पीली ही दिखाई देती है।"

"बेटी, तुम्हें अपने परिवार की प्रतिष्ठा का ख्याल रखना है।"—सीतालक्ष्मी बोली।

"परिवार की प्रतिष्ठा के खिलाफ मैंने क्या किया है?"

"और क्या चाहिए? भले घर की लड़कियां राह चलनेवाले हर किसीके साथ घूमा करती हैं? देखो ये सब लड़कियां अपने कमरों में बैठी कैसे पढ़ रही हैं? तुम इस बात को बिलकुल भूल गई हो कि पढ़ने आई हो, सैर-सपाटा करने नहीं।" सुहासिनी तीक्ष्ण स्वर में बोली।

"यह मत भूल जाओ कि नारी के लिए उसका चरित्र ही उसकी संपत्ति होता है। यदि उससे हाथ धो बैठोगी तो तुम किसीको मुंह दिखाने लायक न रहोगी। ये पागलपन की बातें छोड़ दो। तुम्हें उस युवक को भूल जाना चाहिए। फिर आगे कहीं उससे मिलोगी तो हमें कुछ कड़ी कार्रवाई करनी होगी। तुम्हारी पढ़ने की इच्छा नहीं है तो हमारे साथ अभी चलो।" सीतालक्ष्मी ने कठोर होकर कहा।

सरला मुंह ढांपकर रोने लगी। रोते-रोते उसकी आंखें लाल हो गईं। उसने अपने दिल के भीतर प्यार के जो महल बनाए थे, उनपर प्रचंड प्रभंजन का प्रहार होते देख सरला तिलमिला उठी। कुछ निर्णय करने के लिए समय भी नहीं था। साहस बटोरकर उसने कहा—"मैंने उसे प्यार किया है।"

"क्या कहा? प्यार किया है!"—सुहासिनी झल्ला उठी।

"हां बहन, मैंने उससे प्यार किया है। मुझे क्षमा करो।" —सरला रो पड़ी।

"यह प्यार नहीं, मोह है, वासना है, प्रवंचना है।"

"नहीं, कभी नहीं। सुरेश मुझे धोखा नहीं दे सकता। उसे मैं अच्छी तरह जानती हूं।"

"क्या जानती हो, खाक। उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर तुम समझती हो कि वह तुमसे प्यार करता है। पुरुष तो स्वार्थी होता है! जैसे भ्रमर सुगन्धित पुष्प के चारों तरफ

गुंजार करते हुए मंडराता है और उसके मकरंद का पान कर निर्दयी हो वहां से चला जाता है, वैसे ही आधुनिक युवक भी युवतियों को केवल उपभोग की वस्तु-मात्र मानते हैं। हां, पुरुषों में भी अच्छे व्यक्तियों का अभाव नहीं है। ऐसे व्यक्ति लड़की के माता-पिता अथवा अभिभावक का मनोरथ जानकर ही अपने प्रेम को सार्थक बनाने का प्रयत्न करते हैं। वे धोखा नहीं देते। जल्दबाजी में आकर जो युवक केवल नारी के सौन्दर्य पर रीझ कर उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है और अपने मोह को प्रेम की संज्ञा देकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए आगे बढ़ता है, उससे सतर्क रहना आवश्यक है।"

"मैं आखिर केवल यही कहना चाहती हूं कि तुम जिस उद्देश्य को लेकर यहां आई हो, उसकी पूर्ति करो।"—सुहासिनी ने समझाया।

"मैं उसे छोड़कर नहीं रह सकती हूं, बहन! मैंने भली भांति सोच लिया है। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।"

"छि: अब हम तुम्हारा मुंह देखना नहीं चाहतीं। लेकिन फिर एक बार सचेत करना चाहती हूं कि तुम आवेश में आकर जो कुछ करने जा रही हो, उसका फल भोगोगी। बड़ी बहन के नाते मैंने अपना कर्तव्य किया है। अब तुम्हारी इच्छा!"—यह कहकर सुहासिनी और सीतालमी वहां से उठीं। सरला रोती ही रही।

१६

"तो फिर क्या किया जाए ?"

"मैं भी यही सोच रही हूं।"

"यह बड़ी विषम समस्या है।"

"इस समस्या का हल ढूंढ़ना होगा।

"यह उतना आसान नहीं, जितना तुम समझती हो।"

"तुम ही सोचकर कोई उपाय बताओ।"

"लेकिन वह उपाय ऐसा हो जिससे हमारी कोई हानि न हो।"

"हानि-लाभ की ज़िम्मेदारी वहन करने में मैं असमर्थ हूं।"

"यह कैसे संभव है ?"

"प्रयत्न करने पर असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है।"

"परन्तु परिस्थितियां अनुकूल हों।"

"अनुकूल बनाने का प्रयत्न हमें करना होगा।"

"प्रयत्न करके भी कभी-कभी मानव असफल होता है।"

"किन्तु साधन अच्छा हो तो साध्य की प्राप्ति अवश्य होती है।"

"उत्तम साधन उपलब्ध हो, तब न ?"

"संसार में साधनों का अभाव ही क्या है ?"

"अभाव तो किसी बात का नहीं, किन्तु साधन को पहचानने का विवेक हो।"

"हमें अब विवेक से ही काम लेना है।"

मद्रास से वापस लौटते ही सुहासिनी ने इस सम्बन्ध में उचित सलाह-मशविरा करने दीनदयाल को बुला भेजा। दीनदयाल सारी बातें सुनकर तुरन्त उचित सलाह न दे सके। यह बड़ी नाजुक समस्या है। इसलिए दोनों ने एकान्त में गंभीरतापूर्वक चर्चा की। किन्तु किसी निर्णय पर न पहुंच सके।

सरला वयस्का है। जोर-ज़बरदस्ती से उसे मनाना असंभव है। क्रोध में आकर उसे डांटें तो हो सकता है कि वह कोई घातक कृत्य कर बैठे। अथवा अपनी बात पर अड़कर वह सुरेश से शादी भी कर ले। दोनों तरफ से परिवार की प्रतिष्ठा में कलंक ही लगेगा।

स्वभावतः मानव का हृदय कोमल और भावुक होता है। इस भावुकता के कारण ही व्यक्ति कभी-कभी अपनी सीमा लांघकर कुछ कर बैठता है। यदि वह किसी वस्तु अथवा मनुष्य के प्रति आकर्षित होता है तो उसके लिए अपना सब कुछ अर्पण कर बैठता है। अपने लिए कुछ बचाकर नहीं रखता। उस वक्त वह यह नहीं देखता कि इसके उपरांत उस-पर क्या बीतता है। आकर्षण में जो लगाव है, उसका वेग इतना तीव्र होता है कि दो वस्तुओं के मध्य में वह अंतर रहने

नहीं देता। यदि कोई अन्तर बनाए रखने का प्रयत्न करता है तो कभी-कभी उसमें दब भी जाता है।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा तब तक होती है जब तक वह अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता। भूल या असावधानी से यदि उसका पैर फिसल गया तो वह अपनी टांग तोड़ बैठता है।

मानव-मानव के बीच जो स्नेह का नाता है वह इतना कोमल और नाज़ुक होता है कि एक ही शब्द से वह नाता जुड़ भी सकता है और तोड़ा भी जा सकता है। वे ही स्नेह और क्रोध कहलाते हैं। इन दोनों का उद्गम-स्थल हृदय ही है। ऐसे परस्पर-विरोधी तत्त्वों के सम्मिश्रण का निवास हृदय के भीतर होता है। उन्हीं तत्त्वों को लेकर व्यक्ति महान है। उसमें दुर्बलताएं भी हैं और खूबियां भी। किन्तु विचित्रता यह है कि कभी खूबियां उभर आती हैं, तो कभी दुर्बलताएं। इसीलिए कभी जान देता है तो कभी लेता है। कभी रोता है तो कभी रुलाता है। कब भावावेश में आकर क्या कर बैठता है, कुछ कहना कठिन है। पल-पल में परिवर्तित होनेवाले मानव के हृदय में कौन-सी ऐसी सूक्ष्म तंत्रियां हैं जो मीठी तान भी सुनाती हैं और खम्माच की शोकपूर्ण राग-रागिनियां भी। आज तक कोई भी मानव के इस मनोवैज्ञानिक मर्म को जान नहीं पाया। क्योंकि मनुष्य इन परस्पर-विरुद्ध तत्व-रूपी तार पर असंतुलित हो नृत्य कर रहा है। न मालूम कब वह

अपने इस संतुलन को खो बैठे।

मानव जीवन एक पहेली है। खूबी यह है कि प्रत्येक जीवन की अपनी विशेषताएं होती हैं और अपनी समस्याएं। इन्हें सुलझाने के लिए कोई एक फार्मूला काम नहीं दे सकता है। क्योंकि व्यक्ति की परिस्थितियां और परिवार का वातावरण भिन्न होता है। अतः उनके अनुरूप उन-उन समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का प्रयत्न होना चाहिए। किसी व्यक्ति की समस्याएं यूंही सुलझ जाती हैं तो किसीकी उलझ भी जाती हैं। यहीं पर व्यक्ति को सोचना पड़ता है और विवेक का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

सुहासिनी अपने पिता की मृत्यु के उपरांत भविष्य की कल्पना न कर दिन बिताती रही। पैतृक संपत्ति ने उसे विशेष रूप से सोचने का अवसर नहीं दिया। किन्तु खर्च अधिक और आमदनी नहीं के बराबर होने के कारण जो कुछ संपत्ति थी वह घटती जा रही थी। यदि यही क्रम रहा तो कुछ समय में उस संपत्ति के समाप्त होने की संभावना है। फिर क्या होगा?

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। कुछ लोग केवल आज के दिन को आनन्दपूर्वक बिताने के पक्ष में हैं, कुछ लोग कल का भी खयाल रखते हैं। दूसरे वर्ग के लोगों ने ही संपत्ति-संचय करने की तरकीब निकाली। क्योंकि मनुष्य सदा कमाने का अवकाश नहीं पा सकता। बीमारी और मृत्यु भी उसके परिवार को पंगु बना सकती है। अतः भविष्य का खयाल रखना आवश्यक

ही नहीं अपितु अनिवार्य हो जाता है।

सुहासिनी के सामने अपनी संपत्ति बढ़ाने की कामना है। लेकिन उसकी पूर्ति कैसे हो ? उसने बहुत सोचा। किन्तु किसी निर्णय पर वह पहुंच नहीं सकी। उसने अपने हितैषी दीनदयाल को खबर भेजी। सीतालक्ष्मी और राजाराम भी इस चर्चा में शामिल हुए। सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए राजाराम ने एक फिल्म बनाने की सलाह दी। इस मामले पर काफी बहस हुई। दीनदयाल ने सुझाव दिया कि एक तो इसमें लाखों रुपये लगाने पड़ते हैं, और दूसरी बात निश्चित रूप से लाभ होने की आशा नहीं। कभी-कभी पूरी पूंजी के डूब जाने का खतरा है। अतः त्याज्य है।

सीतालक्ष्मी ने बहुत सोच-समझकर सलाह दी कि वह व्यापार ऐसा हो जिससे कभी नुकसान होने की संभावना न हो, मूल पूंजी वैसी ही बनी रहे और लाभ बराबर मिलता हो।

सुहासिनी कुछ नहीं कर सकी। दीनदयाल गम्भीर होकर सोचते रहे।

राजाराम ने उछलकर कहा कि टैक्सी का व्यापार सबसे अधिक लाभदायक है। इसपर भी बहस हुई। लेकिन टैक्सी खरीदना, ड्राइवरों पर नियंत्रण रखना, टैक्सी की मरम्मत का प्रबन्ध करना इत्यादि कई तरह की कठिनाइयां हैं। इसलिए यह भी उतना व्यावहारिक नहीं है।

मकान बनाकर किराये पर देने की बात भी सोची गई।

लेकिन इसमें भी किरायेदारों से भाड़ा वसूल करने और उन्हें सब तरह की सुविधाएं पहुंचाने सम्बन्धी बाधाओं को देखते हुए इसे भी अमल में लाने से त्याग दिया गया।

अन्त में दीनदयाल ने यही पूंजी सिनेमा-थियेटर बनाने में लगाने की सलाह दी। उन्होंने समझाया कि आजकल सिनेमा देखनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है। थियेटर कभी खाली नहीं रहता। उससे मूल पूंजी के डूबने का डर नहीं है। साथ ही लाभ ही लाभ होता है।

उन्होंने यह भी बतलाया कि वे अपने प्रभाव से सिनेमा-थियेटर के लिए लाइसेन्स दिलवा देंगे।

यह सलाह सबको पसन्द आई।

इसके लिए आवश्यक सारा प्रबन्ध करने का भार दीनदयाल और राजाराम को सौंपा गया

१७

लता जब वृक्ष का सहारा पाती है तो वह अत्यन्त वेग के साथ बढ़ती जाती है। जितना अधिक वह उस वृक्ष से लिपटती है, उतनी ही वह स्थिरता पाती है और फैलने लगती है। अन्त में अधिक पल्लवित और पुष्पित हो फल भी देने लगती है। किन्तु वह फल कड़वा है अथवा मीठा, तभी

बताया जा सकता है जबकि फल चखा जाता है।

सरला और सुरेश का प्रेम दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया। एक-दूसरे को छोड़कर रहने में कठिनाई का अनुभव करने लगे। पढ़ाई में उनको उतनी दिलचस्पी न थी जितनी कि एक-दूसरे के संग बैठकर दिल को गुदगुदानेवाली बातें करने और स्पर्शसुख पाने में। इसके लिए वे सदा मौका ढूंढ़ा करते। चाहे जितना भी खर्च क्यों न हो वे अक्सर सिनेमा-थियेटर, बीच, नौका-विहार, घुड़दौड़ इत्यादि में जाते थे। ये ही उनके मिलने के स्थान थे, जहां दिल खोलकर बात कर सकते थे और आमोद-प्रमोद भी।

प्रेम गहरा होता गया। उसका रंग उस प्रकार चढ़ता गया कि अब उसका धुलना सम्भव नहीं था। उसके नशे में दोनों अपने होश-हवास खो बैठे। व्यक्ति एक बार फिसल जाता है तो वह बराबर फिसलता ही जाता है। फिर अपने पैर जमाने का प्रयत्न नहीं करता।

सरला और सुरेश को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। उसका वे अच्छे कामों में सदुपयोग भी कर सकते थे और दुरुपयोग भी। अपने परस्पर परिचय का वे अन्य मार्गों में लाभ भी उठा सकते थे। लेकिन उन्होंने जो मार्ग अपनाया उसपर वे चलते ही रहे।

एक दिन दोनों सिनेमा देख रहे थे। उसमें प्रेम का एक जैसा प्रसंग आया जो उन दोनों के आकर्षण से साम्य रखता

था। उसमें एक युवती और एक युवक परस्पर प्रेम करते हैं, उस प्रेम में पागल हो अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं। बीच में असंख्य विघ्न-बाधाएं उपस्थित होती हैं। उसमें वे नाना प्रकार की कठिनाइयां झेलते हैं। अंत में वे उनपर विजय प्राप्त करके दांपत्य के सूत्र में बंध जाते हैं।

उस कहानी में ऐसी रोमांचक घटनाएं दिखाई गईं जिन्हें देखते अपने मन पर काबू न कर सकनेवालों का फिसलना स्वाभाविक है। सरला और सुरेश इस मार्ग के पथिक ही रहे। उन्हें कहानी में चित्रित वे घटनाएं अनुकरणीय जंचीं। सुरेश ने सरला को खींचकर अपने आलिंगन में लिया और कसकर उसके अरुणिम अधरों और कपोलों पर चुम्बन अंकित करता गया। इस स्पर्श से सरला को एक विचित्र अनुभूति हुई।

उसका शरीर रोमांचित हो उठा। परन्तु वह स्थान उस अनुभूति को तृप्त करने का नहीं था। इसलिए वह उस अनुभूति के लिए व्याकुल रहने लगी।

अनुभूति क्षणिक होती है। वह अव्यक्त आनन्द प्रदान करती है। व्यक्त जगत् का प्राणी अव्यक्त अनुभूतियों का उपासक होता है। अव्यक्त मधुरिमा व्यक्ति को जो तन्मयता प्रदान करती है वह क्षणिक होते हुए भी प्रभावशाली होती है। इसलिए अतृप्त होती है।

तृप्ति में मनुष्य विरक्त होता है। अतृप्ति में अनुरक्ति है। अनुरक्ति ही मनुष्यों में जीने की आशा जगाती है। जीवन में

बराबर उन अनुभूतियों को चखकर मनुष्य उसका आनंद लूटना चाहता है।

अतृप्ति में ही जीवन है।

प्रत्येक का जीवन अपने ढंग का अलग होता है। जीवन-क्रम की निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। हर कोई अपने ढंग से सोचता है, अपने विचार को सर्वोपरि मानता है। एक की जीवन-प्रणाली दूसरे को भाती नहीं। चाहे वस्तु जितनी ही उत्तम हो उसकी प्रशंसा के साथ उसकी निन्दा भी अवश्य होती है। गुण-दोषों से युक्त प्रकृति में यह विविधता उसकी विशेषता कही जा सकती है। यह विशेषता व्यक्तियों में भी देखी जा सकती है।

सरला दिन-प्रतिदिन सुरेश की ओर आकृष्ट होती गई। सुरेश भी उसको अपनी ओर आकृष्ट बनाए रखने के लिए हर तरह की कोशिश करता रहा। यह क्रम बहुत समय तक चलता रहा।

सृष्टि का यह विचित्र गुण है कि दो वस्तुओं के मेल से एक नई व तीसरी वस्तु का उद्भव होता है। उस वस्तु में उन दोनों वस्तुओं के गुण, तत्व, रंग, आकार इत्यादि पूर्ण मात्रा में, आंशिक मात्रा में अथवा मिश्रित रूप में भी पाए जाते हैं। दो वस्तुएं अपने कुछ अंश का त्याग कर तीसरी वस्तु के प्रादुर्भाव का कारणभूत बन जाती हैं। दो वस्तुओं का [illegible] चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से, लेकिन सृष्टि अपना [illegible]

करती जाती है। कभी उस नई वस्तु का बड़े हर्ष से स्वागत होता है, तो कभी बड़ी निराशा के साथ। वस्तु तो जगत् के सामने उपस्थित हो अपने अस्तित्व का परिचय दे देती है। वस्तु के निर्माण के कारण विचित्र होते हुए भी सहज हैं।

सरला अपनी इन्द्रियों की तृप्ति का शिकार बनी। वह बराबर उसकी तृप्ति करती गई। मनुष्य अपनी तृप्ति के लिए प्रयत्न करता जाता है। उस तृप्ति के आनन्द में अवांछित परिणाम का वह ख्याल नहीं करता। सरला उसका अपवाद नहीं है।

दिन बीतते गए। हठात् एक दिन सरला ने अनुभव किया कि उसका सिर चकरा रहा है। उसे कै हुई। और बराबर वह क्रम कुछ समय तक जारी रहा। वह समझ नहीं पाई कि आखिर इसका कारण क्या है? उसने अपनी हालत सुरेश से बतलाई सुरेश ने डाक्टर की सलाह लेना उचित समझा। जब एक लेडी डाक्टर से परामर्श लिया गया तब उन्हें मालूम हुआ कि सरला एक नये प्राणी का भार वहन कर चुकी है।

क्षेत्र में बीजारोपण होता है तो वह बीज उचित वातावरण पाकर फूल जाता है। और अपने में व्याप्त अंकुर को प्रकट कराने को छटपटाता है। एक दिन पृथ्वी के गर्भ को चीरकर इस विशाल प्रकृति में अपने अस्तित्व का परिचय देता है।

नारी क्षेत्र है। उससे शिशु-रूपी अंकुर फूटता है। क्रमश वही मानव रूपी विशाल वृक्ष हो जाता है। सरला के गर्भ में

बीज क्रमशः अपने अंकुर-रूप को प्राप्त करता गया। उसका अस्तित्व बाहर अपना परिचय देने लगा। गर्भ बढ़ता गया। अपने पेट को बढ़ते देख सरला व्याकुल हो उठी। उसका सारा आनन्द अब भय के रूप में परिणत हुआ। उसे लगा कि उसकी भूल का परिणाम उसके पेट में प्रवेश करके उसे धमका रहा है। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। और सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। अब तक उसने जिस जीवन को रसमय एवं आनन्दप्रद माना था वह अब नीरस प्रतीत होने लगा। दुनिया और समाज की परवाह न करके सुख-सागर में तैरती रही; अब वही अपनी उत्तुंग लहरों की लपेटों से डुबाता नज़र आने लगा। समाज के कठिन नियमों के सामने वह अपराधनी-सी प्रतीत होने लगी। ग्लानि से वह दबती गई।

सरला का जीवन अब दुःखमय प्रतीत होने लगा। अपनी बहन के स्मरण-मात्र से ही वह थर-थर कांप उठी। अब वह उसको अपना चेहरा कैसे दिखा सकेगी? उसने समझाया भी था। लेकिन उस वक्त उसके विवेक पर परदा पड़ा हुआ था। लोगों के सामने आने में उसे झिझक होने लगी। समाज की दृष्टि में आंख बचाकर अब फिरना होगा। वह कहीं भी जा नहीं सकेगी। सब उसकी ओर घूर-घूरकर देखेंगे। उंगली उठा-उठाकर उसकी अवहेलना करेंगे। 'कुलटा' कहकर उसकी निन्दा करेंगे।

व्यक्ति ही समाज, धर्म, इत्यादि सबका निर्माता है। फिर

भी उसका समाज में तब तक आदर है जब तक वह उसके विधानों का पालन करता है और उस लीक से जरा भी हटता नहीं। यदि वह इन नियम-रूपी रेखाओं का अतिक्रमण करता है तो वह समाज की दृष्टि में गिर जाता है। नारी एक छोटी-सी भूल करती है तो वह तुरन्त प्रकट हो जाती है। समाज उसको तिल का ताड़ बनाकर उसे हर तरह से तंग करने की सोचता है। सदा से समाज नारी को दबाता आ रहा है। अपने नियम-रूपी पंजों में फंसाकर उसे नोचने, कुरेदने और घायल करने में आनन्द का अनुभव करता आ रहा है। नारी ने उस अंधव्यवस्था के चक्र में पिसकर उसका विरोध नहीं किया। वह पिसती जा रही है और पिसती जाएगी।

सरला ने प्रेम किया। प्रेम करना अपराध नहीं। किन्तु उसका परिणाम एक भयंकर वात्याचक्र के रूप में उसके सामने उपस्थित हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यह उसे अपनी लपेट में लेने के लिए कृत निश्चय हो आगे बढ़ा आ रहा है। सरला के शरीर में कंपन अधिक हुआ। भय से संत्रस्त हो सिहर उठी। उसने निश्चय किया कि अब वह दुनिया को मुंह दिखा नहीं सकेगी।

जीवन से निराश हो सरला ने 'पोटाशियम साइनाइड' लेकर अपने दुःखों का निवारण करना चाहा।

१८

दीनदयाल ने बड़ी दौड़-धूप के बाद थियेटर निर्माण-संबंधी लाइसेन्स दिला दिया। एक अच्छे इंजीनियर के द्वारा थियेटर का प्लान तैयार कराया और उसे स्वीकृत भी कराया। थियेटर निर्माण के लिए आवश्यक सारी तैयारियां सुहासिनी और राजाराम ने कीं।

निर्माण का कार्य शुरू हुआ। राजाराम के पर्यवेक्षण में कार्य तेज़ी के साथ होने लगा। सुहासिनी ने उसकी पूरी जिम्मेदारी राजाराम को सौंपी। वही निर्माण-सम्बन्धी सामग्री का संचय करता और कार्य की देखभाल किया करता।

राजाराम ने पहले सोचा था कि बिना किसी काम-धंधे के सुहासिनी के घर में रहते उसकी रोटियां तोड़ना अच्छा नहीं होगा। इसलिए पहले उसे झिझक भी हुई। लेकिन अब वह इस तरह से उसका प्रत्युपकार करते हुए खुशी का अनुभव करने लगा। यों तो उसे अपने घर खाने-पीने की कमी न थी। वह अपना खर्च आप उठा सकता है। किंतु सुहासिनी मानती न थी। अलावा इसके योंही दिन बिताने में राजाराम को मानसिक परिताप भी होता था।

राजाराम का समय बड़ा अच्छा बीतने लगा। उसके हाथ में करीब तीन हजार रुपये थे। वह इन रुपयों का खर्च अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है। उसके अधीन कई मजदूर

ग्रौर कर्मचारी हैं। उनको वह डांट सकता है, काम से निकाल सकता है, काम दे सकता है। इस अधिकार को लेकर उसे मानसिक संतोष और कभी-कभी अभिमान भी होने लगा।

व्यक्ति के हाथ में जव अधिकार और धन आ जाता है तव उसमें गर्व की भावना भी आ जाती है। उसके अपवाद भी हो सकते हैं, किन्तु अधिकांश व्यक्तियों में यह परिवर्तन देखा जा सकता है। अधिकार में समानता की भावना लुप्त हो जाती है। यहीं पर व्यक्ति दो वर्गों में बंट जाता है। धन की भी यही वात है। एक देनेवाला वर्ग होता है, दूसरा लेनेवाला। देनेवाला वर्ग यह सोचता है कि हमारे कारण यह वर्ग जीवित है। हमारी कृपा पर ये लोग निर्भर हैं। इस कारण उस वर्ग को निम्न और श्रमिक मानकर उनपर सदा अंकुश रखने की कोशिश करता है। लेकिन वह भूल जाता है कि उस वर्ग के श्रम से ही वह अपनी पूंजी वढ़ा सकता है तथा श्रम का मूल्य रुपयों से आंका नहीं जा सकता है।

दूसरा वर्ग आर्थिक दृष्टि से परावलंवी है। उदर-पोषण जोकि व्यक्ति की वुनियादी आवश्यकता है, उसकी पूर्ति अर्थ के द्वारा ही हो सकती है। अतः यह वर्ग स्वाभाविक रूप में दवा रहता है। शोपित होता है। यहीं पर शोषण के लिए गुंजाइश होती है।

इस रहस्य को राजाराम भली भांति जान गया।

धन में कौन-सी महिमा है, कहा नहीं जा सकता। अच्छे,

से अच्छा व्यक्ति भी धन के आ जाने से बदलते देखा गया। व्यक्ति की आवश्यकताएं और उसकी कामनाओं की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन धन है। धन के संग्रह होने पर कुछ लोग लोभ में पड़कर उसे और भी बढ़ाने की कोशिश करते हैं, कुछ लोग दुनिया-भर की कामनाओं की पूर्ति के लिए लालायित होते हैं। धन में यह चंचलता है अथवा व्यक्ति के चरित्र में, यह विवादांश है। परन्तु इतना निश्चित है कि धनी व्यक्ति को ऊंची सोसाइटी का सदस्य बनकर अपने आडम्बर के लिए खर्च करते देखा गया है। ऊंची सोसाइटी के अंग कई कहे जा सकते हैं। उनके मनोरंजन के लिए नाना प्रकार के साधन ढूंढ़े गए हैं। उनमें ताश खेलना, घुड़दौड़, न्यूयार्क काटन मार्केट, मदिरा-सेवन आदि मुख्य हैं। ऊंची सोसाइटी में इनका आदी न होना असभ्यता का चिह्न माना जाता है। इनमें पैसा पानी की तरह बहाया जाता है।

राजाराम के हाथ में जब एकसाथ इतना धन आया तब वह कुछ समय तक बड़ी ईमानदारी के साथ पैसा खर्च करता था। उसकी अन्तरात्मा यह बताती रही कि विश्वासघात करना उचित नहीं।

पहले वह सभी प्रकार के व्यसनों से दूर एक अबोध युवक था। थियेटर-सम्बन्धी काम पर उसे कई बार मद्रास जाना पड़ा और ऊंची सोसाइटी के लोगों से भी संपर्क स्थापित करना पड़ा। उस सोसाइटी के लोगों से अक्सर मिलते रहने के

कारण परोक्ष रूप से उनका प्रभाव राजाराम पर पड़ता गया। अपना काम बनाने के लिए उसे कभी-कभी अनिच्छा से ही सही उनका अनुकरण करना पड़ा।

अनुकरण भी विचित्र वस्तु है। अच्छाई का अनुकरण करने में कई साल लग जाते हैं। आत्मनियंत्रण की आवश्यकता होती है। सत्संकल्प और निष्ठा के बिना अच्छाई का अनुकरण संभव नहीं। उसके बावजूद व्यक्ति उसके अनुकरण में असफल होता है। बुराई का अनुकरण करने की आवश्यकता ही नहीं। अनजाने में ही मनुष्य उसका अनुकरण करता जाता है। फिर भी वह यह नहीं सोचता कि वह बुराई का शिकार हो गया है।

बुराई एक नशा है। नशे में मदहोश व्यक्ति जैसे अच्छाई-बुराई का विवेचन नहीं कर पाता है, वही हालत बुराई के शिकार हुए लोगों की है। तब तक मनुष्य नहीं चेतता जब तक वह पूर्ण रूप से गड्ढे में गिर नहीं जाता है। कोई ज़बरदस्त धक्का लगता है तभी वह आंखें खोलता है।

राजाराम ऊंची सोसाइटी के अनुकरण में दुर्व्यसनों का शिकार हुआ। वह अक्सर क्लबों में जाता, ताश खेलता, कभी-कभी सुरापान भी करता और रात के दस बजे घर लौटता। सीतालक्ष्मी और सुहासिनी सोचतीं कि राजाराम काम की भीड़ में पिसता जा रहा है। मन ही मन वे दोनों अपनी सहानुभूति उंडेलतीं। राजाराम इस प्रकार झूठा यश

प्राप्त करता गया। वह भी ऐसा अभिनय करता, जैसे अत्यधिक कार्य से थक गया हो।

सप्ताह और महीने बीतते गए।

राजाराम दिन-प्रतिदिन व्यस्त दिखाई देने लगा। उससे मिलने आने-जानेवालों की संख्या बढ़ती गई। समाज में भी वह उदार, धनी और सभ्य माना जाने लगा। उसकी झूठी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। रुपयों की आड़ में यद्यपि वह उपर्युक्त गुण अपने ऊपर लादता गया, लेकिन उसके चोले के भीतर असली राजाराम कभी का लुप्त हो गया था।

राजाराम अपनी स्थिति को पहचान नहीं पाया। दूसरों की नकल में ताश खेलते समय और घुड़दौड़ के समय भी बाज़ी लगाता, लोगों की वाहवाही पाकर उछल पड़ता। वह इस प्रकार एक विचित्र दुनिया का प्राणी बना।

अपने बुरे व्यसनों में राजाराम खर्च करता गया। उसके हाथ में धन था और स्वतन्त्रता भी थी। होटलों का अभाव न था। मन पर काबू तो था ही नहीं। इसलिए राजाराम की वह हालत हुई जो एक बे-लगाम घोड़े की होती है। वह पहले की तरह थियेटर के काम में उतना उत्साह और दिलचस्पी नहीं रखता था। दिन में एक बार वहां पर पहुंचता, ठेकेदार को आवश्यक सूचनाएं देकर चला जाता। थियेटर का काम जारी रहा।

बेहद आज़ादी इन्सान को बिगाड़ देती है, तो कभी-कभी

उसे बनाती भी है। उसका इस्तेमाल अकल से होना चाहिए। अकल के अभाव में ऊंची सोसाइटी की नकल भी खतरनाक हो जाती है। यदि एक बार व्यक्ति को उसका चस्का लग जाता है तो फिर वह छुड़ाए भी नहीं छूटता। तब वह न घर का न घाट का हो जाता है।

राजाराम कृत्रिम सभ्यता की नकल करता गया। उसने समाज में अपनी धाक जमाने की कोशिश की। बड़े व्यक्ति के रूप में सम्मानित होना चाहता था। इस लोभ में वह अपने स्वाभाविक गुणों को छोड़कर कृत्रिम जीवन व्यतीत करने लगा। इस जीवन में उसे आराम तो अवश्य मिलता था लेकिन आत्म-संतोष नहीं।

राजाराम को पता न था कि अपने इस आचरण का परिणाम क्या होगा?

१९

"तुम इतनी हताश क्यों हुई हो?"

"नहीं तो क्या करती?"

"मैं पूछता हूं; तुम्हें किस बात की कमी हुई?"

"सुरेश, अबोध की तरह मत बोलो। इस समय आत्महत्या के सिवा मेरे सामने कोई दूसरा चारा नहीं!"

"मैं नहीं पहुंचता तो तुम आत्मत्याग कर चुकी होतीं। मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम इतने दुर्बल मनवाली हो।"

"अनुभव करनेवालों पर क्या वीतता है, उसे पराये लोग क्या समझ सकते हैं?"

"मुझे क्या पराया समझती हो ?"

"अपना ही समझूं तो तुम क्या कर सकोगे ?"

"मैं तुम्हारे लिए क्या नहीं कर सकता ? हम दोनों एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। एक का कष्ट दूसरे का भी है। हम सुख और आनंद का जैसे समान रूप में अनुभव करते हैं वैसे ही दुःख और कष्टों का भी करेंगे। मैं तुम्हारे लिए सब-कुछ करने के लिए तैयार हूं, तुम मुझपर यकीन करो। तुम्हारे विना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। ज़रूरत पड़ने पर इसे मैं साबित करूंगा।"

"तो मैं एक बात पूछूं ?"

"वेशक !"

"बात के पक्के रहोगे न ?'

"ज़रूर, ज़रूर। चाहो तो जांच कर देखो..."

"तव तो हमारे विवाह का प्रबन्ध करो।"

सुरेश का चेहरा सहसा पीला पड़ गया। उसके मुख-मंडल पर चिन्ता की रेखाएं पड़ गईं। सरला उसके मनोभावों का अध्ययन करने लगी।

सकुचाते हुए सुरेश ने कहा—"विवाह का प्रबन्ध इतनी

जल्दी कैसे हो सकता है ?"

"क्यों नहीं, हम चाहें तो कल भी कर सकते हैं।"

"ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी है ? हमारा विवाह होगा और ज़रूर होगा। इस बात को तुम गांठ बांध लो। सुरेश कभी अपनी बात नहीं बदलता है।"

"ठीक है बाबा, मैं जानती हूं। लेकिन इसी समय होना हमारे लिए हितकर होगा।"

"अहित तो मैं कभी नहीं चाहता। जल्दबाजी में कोई काम नहीं होता। समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाता है। घबराओ मत। कोई न कोई उपाय निकल ही आएगा।"

"उपाय की प्रतीक्षा करते हम बैठे नहीं रह सकते। समय बीतता जा रहा है और पेट भी बढ़ता जा रहा है। यह खबर किसीके कानों में पहुंचने से पहले ही हमें उचित व्यवस्था कर लेनी होगी।"

"मैं लाख समझाता हूं तो तुम नहीं मानतीं। अपना ही राग आलापती जाती हो। क्या मुझपर शक करती हो ?"—विकृत स्वर में सुरेश बोला।

"शक करने की बात नहीं। इस रहस्य का पता लग गया तो होस्टल और कालेज से हमें निकाल दिया जाएगा। हमारे मुंह पर कालिख पुत जाएगी। हम अपने घरवालों को भी मुंह दिखाने लायक नहीं रह सकेंगे।"

"तब तो मैं एक उपाय बताऊं।"—सुरेश ने कहा।

"जल्दी बताओ। मेरी जान क्यों लेते हो ?"

"बुरा नहीं मानोगी न ?"

"बुरा मानने से समस्या का समाधान नहीं होगा। हम किसी भी उपाय से इस आफत को दूर कर सकते हैं, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

"किसी लेडी डाक्टर से सलाह लेकर गर्भस्राव कराएं तो ?"

"जान का ख़तरा नहीं है न ?"

"बिलकुल नहीं, तुम निश्चिन्त रहो, मैं व्यवस्था कर दूंगा।"

सरला ने विवश होकर मान लिया।

व्यक्ति अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए विवेक को ताक में रखकर आंख मूंदे कुछ भी कर बैठता है। उस समय भावी परिणाम का कदापि विचार नहीं आता। जब पूर्ण रूप से किसी समस्या में उलझ जाता है तब छटपटाते हुए पश्चात्ताप करते हुए उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। उस समय यह नहीं देखता कि जिन साधनों के ज़रिये वह बाहर निकलना चाहता है, वे उपयुक्त हैं कि नहीं, उसका लक्ष्य केवल यही होता है कि किसी न किसी उपाय से बच जाए तो काफी है। इस प्रकार अपनी गलती को छिपाने के लिए दूसरी गलती करता है, फिर गलतियां करता ही जाता है। यही कारण है कि जो व्यक्ति एक बार अपने स्थान से गिरता है,

फिर वह ऊपर उठने का नाम नहीं लेता।

कुछ लोग जान-बूझकर स्वार्थ के लोभ में पड़कर गड्ढे में गिरते हैं, कुछ लोग अनजाने में। लेकिन उसका फल सबको समान रूप से भोगना पड़ता है। कुछ लोगों को गिरने में आनंद है तो कुछ लोगों को ऊपर उठने में। आनंद सबका एक तरह का नहीं होता। वह फल-भोक्ता की अभिरुचि पर निर्भर है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि दो व्यक्ति किसी कार्य के समभागी होते हुए भी एक-दूसरे को गड्ढे में गिराकर आप बाल-बाल बच जाता है और कभी-कभी गिरे हुए को देख दांत दिखाते हुए उपहास भी करता है। ऐसी हालत में भोक्ता पर क्या बीतता है, भुक्त-भोगी ही जानता है।

सरला और सुरेश ने गर्भ गिराने के अनेक प्रयत्न किए। लेकिन असफल रहे। परिस्थिति दिन-ब-दिन नाज़ुक होती जा रही थी। सरला खाना-पीना छोड़ रोती ही रहती। एकान्त में बैठकर अपनी करनी पर पछताती। उसे अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। हर मिनट उसे डराता हुआ प्रतीत होता। वह अपने इस रहस्य को छिपाने के लिए हर व्यक्ति से डरती। प्रकाश से भी डरती। सदा कमरे में ही खोई-सी चमगादड़ की भांति पड़ी रहती।

काल-चक्र के परिभ्रमण में कई दिन बीतते गए। सरला का होस्टल में रहना खतरनाक था। सुरेश ने सरला को छुट्टी

लेने की सलाह दी। सरला को आसानी से छुट्टी मिल गई। कॉलेज से दूर एक मुहल्ले में किसी तंग गली में जहां कि लोगों का आना-जाना भी कम होता है, किराए पर एक कमरा लेकर सरला रहने लगी। सुरेश बराबर आता-जाता रहा।

२०

एक कील की वजह से सारा राज्य खो जाता है।

थिएटर का निर्माण चलता रहा, पर मंद गति से। उचित पर्यवेक्षण के अभाव में कार्यकुशल कारीगर भी आलसी हो जाते हैं। थिएटर के निर्माण की देख-रेख करनेवाला इंजीनियर बहुधंधी आदमी था। वह बातें अधिक बनाता, हथेली में स्वर्ग दिखाता। पर जब तक उसे बढ़िया टिफन और गोल्डफ्लैक सिगरेट का टिन उपहार में नहीं दिया जाता, तब तक वह काम में दिलचस्पी न लेता। उसे प्रसन्न रखना राजाराम के लिए आवश्यक हो गया।

राज, बढ़ई, मज़दूर भी पहले उत्साह दिखाते रहे, लेकिन ज्यों-ज्यों काम बढ़ता गया, त्यों-त्यों वे भी अपने असली रूप का परिचय देने लगे। मिस्त्री का उत्साह ठंडा पड़ गया। उसने चार-पांच जगह मकान बनाने का ठेका लिया था। उनका निरीक्षण करना भी ज़रूरी था। मिस्त्री के रहते समय राज

और मज़दूर काम में गति लाते, उसके वहां से जाते ही हंसते, वार्तालाप करते और गाते अपना समय यूंही काट देते, उनमें कुछ ऐसे मज़दूर भी थे जिन्हें बहुत दिनों से काम नहीं मिला था। उस काम को धीरे से घसीटते एक साल और गुज़ार देना चाहते थे।

बढ़ई और मिस्त्री ईंट, चूना और लकड़ी खरीदते समय अपने कमीशन की सुरक्षा की उचित व्यवस्था पहले ही कर देते। इसलिए वस्तुओं का मूल्य बाज़ार-भाव से अधिक चुकाकर राजाराम को अपना काम चलाना पड़ता।

ये सारी बातें राजाराम को तब मालूम हुईं जबकि थिएटर का निर्माण आधे से ज़्यादा हो चुका था। लेकिन तब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत।

राजाराम पहले से ही लापरवाह था। किसी काम को दिलचस्पी के साथ पूरा करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। ऊंची सोसाइटी की नकल ने उसे और भी तबाह कर दिया। ताश खेलने में और घुड़दौड़ में आंख मूंदे रुपये लगाता रहा। कभी तैश में आकर बड़ी-बड़ी रकमों की बाज़ी लगाता और उसमें अपना सब कुछ खोकर मुंह लटकाए घर लौटता। वह सदैव इन खेलों में रुपये खोता ही था, जीतता कभी नहीं था। बड़ी भारी रकम जीतने की उसकी लालसा इससे और भी प्रबल होती गई। वह सोचता, रकम कभी जाती है तो कभी आती भी है। न मालूम मुझे एक और बाज़ी में भारी रकम

हाथ लगे। मैं अभी हाथ खींचकर अपनी किस्मत को खोटा क्यों बना दूं? इस प्रलोभन में पड़कर वह रुपया लगाता ही गया। आखिर उसको लेने के देने पड़े। वह इस रास्ते इतना दूर आगे बढ़ता गया था कि अब लौटना संभव न था। भले ही उसे वहां पर ठिकाने की जगह न हो।

बुरी संगति में पड़कर राजाराम ने सुरापान की जो आदत डाली वह इतनी अधिक हो गई कि उसका असर तबीयत पर भी पड़ने लगा। कभी-कभी एकांत में बैठकर वह अपनी स्थिति पर बहुत पछताता। मन में निश्चय कर लेता कि आगे मैं कभी शराब छुऊंगा तक नहीं। लेकिन उसके दोस्त उसे ढूंढ़ते हुए घर पहुंचते और जबरदस्ती पकड़ ले जाते। वह पीने से मना करता और कभी-कभी उनके साथ जाने से भी इनकार करता, लेकिन उसके दुर्बल मन पर वे विजयी होते। इसलिए अनिच्छा से उसे अपनी मित्र-मंडली का साथ देना पड़ता। इस प्रकार वह व्यसनों को छोड़ना चाहता था, परन्तु व्यसन उसे छोड़ते न थे!

एक दिन प्रातःकाल ही वह अपनी कार ले थिएटर का निर्माण देखने गया। वहां पर उसे मालूम हुआ, कोई त्योहार होने के कारण मजदूरों को छुट्टी दी गई है। उसने इधर-उधर घूमकर देखा। थियेटर का बहुत काम शेष रह गया है। निर्माण-संबंधी काफी सामग्री खरीदनी है। मजदूरी इत्यादि के लिए भी काफी बड़ी रकम चुकानी है। इंजीनियर ने

थियेटर के निर्माण के लिए व्यय का जो अनुमान लगाया था, उतनी पूरी रकम सुहासिनी ने उसके हाथ में दी है। लेकिन अभी उसका हाथ खाली हो गया है। इस कल्पना-मात्र से वह घबरा उठा। उसका सारा नशा उतर गया।

राजाराम की अंतरात्मा उसे धिक्कारने लगी। अपने इस विश्वासघात पर उसे ग्लानि हुई। वह सोचने लगा—मैं क्या कर रहा हूं? मेरा लक्ष्य क्या है? मेरे ये दोस्त जो आज मुझे कांटों में घसीट रहे हैं, क्या वे कल मेरी मदद करेंगे? कभी नहीं, कभी नहीं, तो ये मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं?

सोचते-सोचते वह चौंक उठा। वे लोग अपनी आदतों से मजबूर हैं। उनकी ये आदतें आज की नहीं। शायद जन्म-घुट्टी से ही उन्हें लग गई हों। किन्तु मैं उनका साथ क्यों दूं? मेरे न जाने से क्या होता है?

यह धन किसका है? विश्वास का है। मुझे इसका उपयोग करने का अधिकार किस बूते पर दिया है? विश्वास और ईमान पर ही तो है, मैं क्या कर रहा हूं? अपने भोगों में और व्यसनों में उसे पानी की तरह बहा रहा हूं। सुहासिनी को मालूम हो जाएगा तो क्या समझेगी? वह बुरा भले ही न समझे, लेकिन मेरा अपव्यय करना उचित है? सुहासिनी कौन? मामा की लड़की तो है। उस मामा की लड़की जिसने मुझे प्रेम से अपने घर बुलाया, पढ़ाया, लिखाया, बड़ा किया और न मालूम क्या-क्या करना चाहते थे। वे मेरा उद्धार

करना चाहते थे। मैं उस योग्य नहीं था। ऐसे दयालु और प्रेमी मामा की संतान के प्रति कृतघ्नता दिखाना मानवता कहलाएगी? मैं हर तरह से इस परिवार के पतन की नींव खोद रहा हूं। यही मामा और मुझमें अंतर है।

ठीक ही कहा है, बड़े लोगों का मन भी बड़ा होता है और छोटे लोगों का छोटा। अच्छाई और बुराई के बीच जो अंतर है, वही अंतर मैं अब देख रहा हूं।

मैं इस प्रकार कहां बहा जा रहा हूं? इसका जिम्मेवार कौन है? समाज अथवा धन? अधिकार है या स्वतन्त्रता? चरित्र-हीनता है या चित्त की चपलता?

इन घटनाओं का सिंहावलोकन करते राजाराम को अपने जीवन पर विरक्ति पैदा हुई। इससे बचने का उसे कोई उपाय नहीं सूझा। आखिर उसने यह सब छोड़कर भाग जाने का संकल्प किया। लेकिन इस बार उसकी अन्तरात्मा ने उसे रोका। उसी समय उसे ममतामयी माता की याद आई। इसके साथ ही उसे अपने वचन का स्मरण भी आया।

राजाराम को अपने इस विचार पर हंसी आई। उसने निश्चय किया कि वह अपनी गलती सुहासिनी के सामने रखेगा और उससे क्षमा मांगेगा। क्या सुहासिनी क्षमा नहीं करेगी? जीवन में गलतियों का होना स्वाभाविक है। उन्हें पहचान कर अपने को सुधारना ही आदमी का कर्तव्य है। कायर बनकर भाग जाना मूर्खता है। मैं कुछ करके दिखाऊंगा। एक उत्तम

मानव बनने का प्रयत्न करूंगा। मैं अपनी सारी जायदाद बेचकर ही सही, थियेटर का निर्माण पूरा करूंगा।

अपने संकल्प की पूर्ति के लिए दूसरे ही दिन राजाराम रामापुर पहुंचा। अपनी ज़मीन-जायदाद, घर इत्यादि बेच-बाचकर विजयवाड़ा लौटा। ज़मीन बेचने से प्राप्त चेक भुनाकर रुपये गिन ही रहा था कि किसी गिरहकट ने एक रुपये का नोट दिखाकर राजाराम को टोका कि उसका रुपया नीचे गिर गया है, ले ले। ज्योंही राजाराम झुककर रुपया लेने लगा त्योंही वह गिरहकट रुपयों-सहित भाग खड़ा हुआ। राजाराम ने आंखें फाड़-फाड़कर देखा, रुपयों के बंडल गायब थे। घबराहट के साथ इधर-उधर झांका और चिल्ला उठा। उसकी चिल्लाहट सुनकर सब इकट्ठे हुए, लेकिन तब तक चोर चंपत हो गया।

राजाराम का दिल तेज़ी के साथ धड़कने लगा। बड़े भारी क़दम उठाते बाहर आया। पागल की तरह इधर-उधर ढूंढ़ने लगा कि कहीं चोर का पता लग जाए। यह राजाराम के जीवन में पहला मौका था जबकि उसने रुपये खोए। पहले उसने सोचा कि पुलिस में रिपोर्ट देने से शायद रुपये मिल जाएं। लोगों ने भी उसकी यह दशा देख सहानुभूति जताई और पुलिस में रपट देने की सलाह दी।

व्याकुल हृदय को ले पैर घसीटते थाने की ओर जाने लगा। इतने में होटल से रेडियो का संगीत सुनाई दिया—

"देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना वदल गया इन्सान..."

२१

मनुष्य जीवन के उन्नत शिखर पर पहुंचकर गर्व के साथ एक वार चतुर्दिक् अवलोकन करना चाहता है। इसमें वह तृप्ति और आनन्द की कामना करता है। उस समय यह भूल जाता है कि शिखर पर उसका पैर फिसल गया तो गहरी खाइयों में वह उस तरह गिर जाएगा कि वह फिर भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसंधान की वस्तु वन जाएगा। यह जानते हुए भी मनुष्य उस चोटी पर चढ़ना चाहता है और अपने 'अहं' को प्रकट करना चाहता है। लेकिन विरले ही उसमें सफल हो पाते हैं।

राजाराम ने अपने जीवन के उच्चतम शिखर पर चढ़ना चाहा, लेकिन उसने यह नहीं देखा कि उसपर चढ़ने की सामर्थ्य और अनुभव तथा विवेकशीलता उसमें है कि नहीं। वह अपने लक्ष्य पर पहुंच ही नहीं पाया, वीच में ही एक प्रचण्ड झोंके नें उसे ऐसे गिराया कि मुंह के वल खाई में गिर पड़ा।

राजाराम को अपने रुपयों के खो जाने से उतना दुःख नहीं हुआ जितना थियेटर के निर्माण के रुक जाने से।

उसके हृदय में ज्वालामुखी फूट रहे थे। आंधियां उठ रही थीं। लड़खड़ाते, अपने भाग्य को कोसते न मालूम कब वह सुहासिनी के सामने आकर खड़ा हो गया। सुहासिनी ने राजाराम का यह रूप कभी नहीं देखा था। उसने ऐसा अनुभव किया कि संसार का समस्त शोक मूर्तिभूत हो राजाराम के रूप में वहां खड़ा हो। राजाराम का मुख-मंडल लज्जा, ग्लानि, वेदना और भय का रंगमंच बनकर एकसाथ विभिन्न भावों का प्रदर्शन कर रहा था।

सुहासिनी ने विस्मय के साथ राजाराम को देखा और देखती ही रही। सुहासिनी की सहानुभूति पाकर राजाराम का हृदय थोड़ा-सा हलका हुआ। उसने सारी कथा सुनाई। उसने सोचा कि सुहासिनी आग-बबूला हो उठेगी और तीव्र शब्दों में उसकी भर्त्सना करेगी। लेकिन उसके प्रशान्त वदन और शीतल वचनों ने राजाराम को और भी व्यथित बनाया। राजाराम बहुत देर तक वहां रह नहीं सका। अपने सजल नेत्र पोंछते हुए वह अपने कमरे में चला गया। शोकातुर हो वह तकिये में मुंह छिपाकर रोता रहा।

सुहासिनी शिला-प्रतिमा की भांति निश्चेष्ट बैठी रही। उसके हृदय में नाना प्रकार की भाव-तरंगें हिल्लोल करने लगीं।

यह जीवन भी कैसा विचित्र है। सुख-दुःखों का चक्र कितने वेग से घूमता है और कैसे अपनी दिशा बदलता है,

कोई नहीं जानता। मनुष्य कभी-कभी उस चक्र की धुरी में पड़कर ऐसा पिस जाता है कि उसका नामोनिशान तक नहीं रहता।

मानव अपने ऐश्वर्य के कारण जहां आदर का पात्र हो जाता है वहीं सम्पत्ति के अभाव में तिरस्कृत भी होता है। सुख-दुःख मानव-जीवन-रूपी चक्र के दो पहिये हैं। ये गतिशील होने के कारण दिन-रात की तरह वारी-वारी से परिक्रमा किया करते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर सम्राट भिखारी होता है और भिखारी चक्रवर्ती। परिस्थितियों के विषम रूप धारण करने पर ये परिवर्तन हुआ करते हैं। ये अवश्यंभावी हैं, ऐसा तो नहीं कह सकते किन्तु इतना निश्चित है कि कव क्या होता है, कोई नहीं जानता!

सम्पत्ति कभी-कभी अपने अज्ञान और अविवेक के कारण हवा में रखे कपूर की तरह उड़ जाती है। तो कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप, प्रवंचना इत्यादि अन्यान्य कारणों से।

सोचते-सोचते सुहासिनी का दिमाग गरम होने लगा। उसने थियेटर बनवाने का संकल्प ही क्यों किया? उस सम्पत्ति को वैंक में जमा कर उससे प्राप्त व्याज पर अपने दिन काटती तो क्या ही अच्छा होता। लेकिन जव मनुष्य के पतन का अवसर आता है तो शायद वुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

फूफी और राजाराम पर वड़ी-वड़ी आशाएं रखीं, उनपर विश्वास किया। क्या उसीका यह दुष्परिणाम है? शंकरन

नायर आज होते तो ऐसा मौका न आता। छिः, मैं कैसी कल्पना कर रही हूं? पिताजी ही होते तो? लेकिन हितैषियों का इस संसार में सदा बना रहना सम्भव है? मैं भी तो सदैव के लिए अपना आसन यहां सुरक्षित नहीं रख सकती। इस नश्वरता को जानते हुए भी मानव धोखा, प्रवंचना, दगा इत्यादि क्यों करता है? बित्ते-भर का पेट भरने के लिए? कैसा पतन है मानव का? उत्कर्ष और पतन मानव-जीवन के दो सिरे हैं। उत्कर्ष में वह देवता भी बनता है, किन्तु पतन में वह पशु से भी नीच होता है।

व्यापार भी एक दांव है जिसमें हार-जीत संभव है। सुख-दुःख धूप-छांह के समान है। सुख-दुःख-समन्वित जीवन ही आनन्ददायक है। मानव-जीवन रंग-बिरंगे इन्द्रधनुष की भांति विभिन्न कोणों से पूर्ण है।

जीवन का स्वरूप और उसकी गति कब और कैसे बदलती है, कौन जाने? उसे जानने और समझने का अवकाश और ज्ञान किसमें है? अपने जीवन की दिशा समझने का ज्ञान होता तो मानव का जीवन परोसी हुई पत्तल होता। जीवन भी नित्य नवीन होता है। ऐसा न होता तो निश्चित लीक पर चलकर ही वह अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता। लेकिन जीवन की गति व दिशाक्रम बड़े विचित्र होते हैं। इस वैविध्यपूर्ण जीवन के सम्बन्ध में निश्चित परिभाषा देना कठिन है। परिस्थितियों के साथ समझौता करते हुए उन्हें अपने

अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना मानव का कर्तव्य है। कभी-कभी ये परिस्थितियां विपरीत भी हो जाती हैं।

दो हृदय परस्पर मिलते हैं। एक-दूसरे से चिपक जाते हैं। वे ही हृदय कभी ज़ोर से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। शान्ति और संघर्ष जीवन के दो अभिन्न तत्त्व हैं। दिवा-रात्रि जैसे काल के अभिन्न अंग हैं, वैसे ही मानव-जीवन इन तत्त्वों में प्रगति करता जाता है। संघर्ष के कारण ही मानव अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है, वरना मानव-जीवन भी मृतप्राय हो जाता है। ये पक्ष शायद जीवन के लिए आवश्यक हों।

राजाराम ने धन का दुरुपयोग किया है। यह सही है। किन्तु उसने अपना धन भी खो दिया है। इसका उसे बड़ा दुःख है। वह पश्चात्ताप की अग्नि में झुलस रहा है। ऐसी स्थिति में उसे कुछ कहना अच्छा नहीं होगा। कहने से भी वापस मिलने की संभावना नहीं। उलटे वह और न कुछ कर बैठे।

धन तो स्वाहा हो गया। अब व्यक्ति को खोना उचित नहीं। व्यक्ति धन कमा सकता है लेकिन धन व्यक्ति नहीं हो सकता। धन से भी एक व्यक्ति के सुधर जाने का मूल्य बहुत ज़्यादा होता है।

राजाराम का संकल्प अच्छा था। वह ईमानदार भी है। बुरी संगति में पड़कर गलत रास्ते पर चला। यही कारण है वह दिन-प्रतिदिन गिरता गया। अब शायद यह दुर्घटना उसे

सचेत करने के लिए हुई है। ऐसी दुर्घटनाएं मानव-जीवन में अक्सर हुआ करती हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो उनसे सबक सीखते हों। लेकिन जो व्यक्ति उनसे कुछ ग्रहण करता है, वह अपनी ज़िन्दगी को सुधार सकता है। ऐसी दुर्घटनाओं में केवल व्यक्ति-मात्र का ही दोष नहीं होता, परिस्थितियों और वातावरण का भी होता है। व्यक्ति पर परिस्थितियां प्रभाव डाल भी सकती हैं और व्यक्ति उन परिस्थितियों पर काबू भी कर सकता है। उचितानुचित का निर्णय विवेकशील व्यक्ति ही कर पाता है।

इस दुर्घटना से थियेटर का काम रुक गया। निर्माण-संबंधी सामग्री का मूल्य चुकाने में जो बाकी रह गया था, वे लोग भी तकाज़ा करने लगे। अब थियेटर का काम पूरा करना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव था। कर्ज़दारों से पिंड छुड़ाने के लिए आखिर थियेटर बेचने का निर्णय हुआ। दीनदयाल और सीतालक्ष्मी से भी सुहासिनी ने परामर्श लिया। उसके दोनों पक्षों पर समुचित चर्चा के बाद ही उपर्युक्त निर्णय हुआ।

२२

सरला की मनोवेदना तीव्र रूप धारण करती गई। गर्भ-स्थिति शिशु की चिन्ता उसे खाए जा रही थी। अड़ोस-पड़ोस की महिलाओं से वह बचकर रहना चाहती थी लेकिन बच नहीं सकी। अवकाश के समय वे सब सरला को घेर लेतीं और उससे तरह-तरह के सवाल करतीं। सरला उनको उत्तर देने में संकोच में पड़ जाती। उन प्रश्नों में उसके विवाह, उसके पति की नौकरी, मायके की बातें मुख्य थीं। बड़ी-बूढ़ी औरतें जब उससे पूछतीं कि तुम्हारा मंगलसूत्र दिखाई नहीं देता, क्या बात है, तो सरला पशोपेश में पड़ जाती। लेकिन वहां पर उपस्थित महिलाएं व्यंग्य के साथ यह कहकर उस प्रश्न को टाल देतीं कि आजकल पढ़ी-लिखी औरतें मंगलसूत्र कहां पहनती हैं? यह कहते वे खिलखिलाकर हंस पड़तीं। सरला के हृदय पर व्यंग्य के ये बाण ऐसे चुभते कि वह तिलमिलाकर रह जाती। आए दिन इस प्रकार की कोई न कोई समस्या उपस्थित होती और सरला के गर्भ पर आघात होता।

मानव क्षणिक सुख के लोभ में पड़कर जो भूल कर बैठता है, उसका परिणाम इतना भयंकर होता है; इसकी कल्पना तक सरला ने कभी नहीं की थी। वह प्रेम के उन्माद में अपने पर नियन्त्रण खो चुकी थी। उसे नहीं मालूम था कि यह

उफान कुछ ही दिनों में थम जाएगा और उसे बड़ी भारी क्षति पहुंचाएगा।

अनुभव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। अनुभवहीन ज्ञान जीवन के लिए उतना उपयोगी नहीं। ज्ञान से जब अनुभव का जन्म होता है तब व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बना सकता है। अनुभव और ज्ञान के साथ क्रिया का भी समन्वय हो तो सोने में सुगन्ध का काम हो जाता है। उसके अभाव में मानव-जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं का केन्द्र बन जाता है।

वेदना, पीड़ा, ग्लानि इत्यादि ने सरला के हृदय पर डेरा डाल दिया। वह उद्विग्न थी, विकली थी। मानसिक वेदना उसे जलाती और शुष्क बनाती गई। वह एक ऐसा रोगिणी हो गई थी जिसका इलाज केवल विवाह था।

सुरेश विवाह के प्रस्ताव को टालता ही गया। वह पहले की भांति सरला के सामने बैठकर घंटों अपने दिल के गुबारों को प्रकट नहीं करता था। वह केवल अपने प्रेम का अभिनय करता। लेकिन समस्या की तीव्रता का अनुभव नहीं करता और न उसे सुलझाने का मार्ग ही ढूंढ़ता। मार्ग सुझाने पर भी उसपर चलने का वह प्रयत्न नहीं करता।

शंका सभी बीमारियों की जड़ होती है। शंका के कारण ही व्यक्ति हत्या करता है, अपने से अपनों को दूर रखता है और दूसरे व्यक्ति की छाया-मात्र से घृणा करता है। शंका एक ऐसी

भावना है जो एक बार किसीके दिल में घर कर जाती है तो उसकी जड़ें इतनी मज़बूत जम जाती हैं कि उन्हें उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है।

सुरेश के प्रति सरला के मन में शंका ने अपना शासन जमाया। उसके व्यवहार उसकी पुष्टि करते गए। उसके उत्तर और भी उसे दृढ़ बनाते गए। आज तक सरला के मन में इस समस्या से छुटकारा पाने का जो प्रबल विश्वास था वह हिल गया। उसकी आशा भी जाती रही। इसलिए दिन पर दिन वह हताश होती गई।

सरला जब कभी अपने हृदय के उद्गार सुरेश के सामने व्यक्त करती तो सुरेश या तो अनसुनी करता या सुनकर टाल देता। सुरेश में अचानक इस परिवर्तन को देख सरला सिहर उठी। उसने यह सोचकर अपनी प्रेमलता को बढ़ावा दिया कि वह एक मज़बूत वृक्ष के सहारे चोटी तक पहुंचेगी, पल्लवित एवं पुष्पित हो अन्त में फल देगी। लेकिन अब उसे लगा कि उसकी लता में जब कच्चा फल लगा है, तभी उसे समूल उखाड़ फेंकने का प्रयत्न हो रहा है। जब कभी वह विचार उसके मन में आता तो सरला बावली हो अपना सिर पीटने लगती।

इधर सरला की वेदना असहनीय होती गई, उधर सुरेश का सरला के प्रति आकर्षण घटता गया। सरला पहले काफी सुन्दर थी, चंचल थी, लावण्यमयी थी। अपने मधुर वचनों के

द्वारा सुरेश को अपनी ओर आकृष्ट किए रखती थी। सुरेश भी आत्मिक सौन्दर्य का पुजारी न था। शारीरिक सौन्दर्य पर उसकी निगाहें अधिक टिकती थीं। इसलिए गर्भवती सरला को वह पहले की भांति प्यार नहीं दे सका। फिर भी सुरेश के हृदय में अन्तर्वाहिनी की भांति शीतल प्रेम-धारा प्रवाहित हो रही थी, किन्तु इस संकट के समय उसकी अन्तस्थली में उस धारा को रोकता हुआ सा भय का बांध बना हुआ था। अतः उसके लिए वह सिर दर्द का विषय बन गई।

नारी जब माता बन जाती है, उस समय उसमें मातृत्व की भावना भी फूल में स्थित सुगन्ध की भांति जाग्रत् होती है। किंतु पुरुष पिता होकर भी पितृत्व भार को वहन नहीं करता। इस ज़िम्मेदारी से वह मुंह मोड़ना चाहता है। यहीं पर दोनों में संघर्ष भी होता है। पुरुष की इस विच्छृंखलता पर ही नारी खीझ उठती है।

सुरेश पितृत्व की श्रेणी में आ गया। लेकिन उस ज़िम्मेदारी को ग्रहण करने से वह बचना चाहता है। पुरुष बचकर भाग भी जाए, लेकिन नारी अपने मातृत्व के बोझ को गर्भ में धारण किए बच नहीं सकती। वह जहां भी जाएगी, गर्भ भी उसका साथ देगा।

सुरेश सरला को छोड़ भले ही भाग जाए, उससे विवाह करने से भी इंकार भी करे, फिर भी उसकी कुसंगति के फल—मांस-पिंड को अपने गर्भ में धारण किए अपनी सहनशीलता का

परिचय सरला देती ही रहेगी।

२३

"आप सोचते कुछ हैं, और होता कुछ है।"

परिस्थितियां साथ देती हैं तो मनुष्य ऊंचे शिखर पर पहुंच-कर छाती फुलाए सन्तोष की सांस लेता है, परिस्थितियां साथ नहीं देतीं तो गहन गड्ढे में गिरकर आहें भरता है। किसीमें धन के कारण ये उत्थान-पतन देखे जाते हैं तो किसी में मानसिक क्लेश के कारण। चाहे जो भी हो मानव को सताने में ये दोनों सफल हो जाते हैं। इनसे प्राप्त सन्ताप मनुष्य को रुग्ण बनाता है और कभी-कभी उसके जीवन की गति बदलता है। इसलिए यह जानना कठिन है कि किसके जीवन में कैसा मोड़ आता है और उसका प्रभाव कैसा ज़बरदस्त होता है, कुछ कह सकना भी कठिन है।

सुहासिनी की ज़मीन व जायदाद के स्वाहा हो जाने के कारण उसका प्रभाव सीतालक्ष्मी पर ऐसा पड़ा कि वह मानसिक सन्तुलन खोकर बीमार पड़ी। क्रमशः उसमें सन्निपात के लक्षण दिखाई देने लगे। घर-भर के लोगों के लिए यह चिन्ता का कारण बना।

डा० राजू प्रतिदिन आते और सीतालक्ष्मी को दवा देते।

सुहासिनी इन घटनाओं के बीच भी बिना विचलित हुए अपनी फूफी की सेवा करती रही। राजाराम सदा अपनी मां के पास बैठे आंसू बहाता रहता। वह मन ही मन सोचता कि उसने सुहासिनी के प्रति जो अन्याय किया है, उसीका परिणाम उसकी माता की बीमारी है। यह अवांछित भय उसे और भी विकल बनाने लगा। अब उन लोगों के पास इतना धन न था, जिससे किघर बैठे-बैठे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

परिवार का खर्च भी काफी बैठता था। सीतालक्ष्मी की बीमारी, सरला की पढ़ाई और कार का खर्च इतना हो जाता था कि उसे संभालने में कठिनाई का अनुभव होने लगा। सीता-लक्ष्मी की चिन्ता का यह भी एक कारण था। उसे इस बात का बड़ा दुःख था कि उसीके पुत्र ने सुहासिनी की सारी जायदाद डुबो दी है। सुहासिनी की मदद करना तो दूर रहा, उलटे ऐसी क्षति पहुंचाई जिसे कभी पूरा नहीं किया जा सकता। अपनी भी जायदाद होती तो कुछ हाथ बंटाया जा सकता था, लेकिन वह भी स्वाहा हो गई। सब तरह से वह परिवार पंगु बन गया था।

दीनदयाल जब-तब आकर सुहासिनी को धीरज बंधाते थे। परिस्थिति को और भी विषम होते देख उन्होंने सुझाया कि राजाराम को कोई न कोई काम करना ही चाहिए। राजाराम बड़ी खुशी से तैयार हुआ। दीनदयाल ने एक

कारखाने में उसे एक सौ पचास रुपये मासिक वेतन पर नौकरी दिलवाई।

राजाराम दिन-भर कारखाने में काम करता और रात को घर लौटता। एक सौ पचास रुपयों से काम चलता न देखकर कार बेच दी गई और बंगले के पिछवाड़े का हिस्सा और गैरेज किराए पर दे दिया गया। इससे एक सौ रुपये की अतिरिक्त आमदनी होती। यह उस परिवार के लिए डूबते हुए को तिनके का सहारा-सा हो गया।

डाक्टर का खर्च प्रतिमास इतना बैठता कि उसको चुकाने में बड़ी कठिनाई होती। डाक्टर बराबर आते रहे और परिवार के लोगों से काफी परिचित होते गए। इसलिए कभी-कभी वे इस परिवार के संबंध में दीनदयाल से भी चर्चा करते और अपनी सहानुभूति जताते।

राजाराम की कमाई की रोटी तोड़ना सुहासिनी की आत्मा को क्लेश पहुंचाने लगा। बहुत विचार करने के उपरांत साहस करके उसने दीनदयाल के सामने नौकरी करने की इच्छा प्रकट की। दीनदयाल ने डाक्टर के घर में उनकी सौतेली मां के बच्चों को पढ़ाने का काम दिलवा दिया। मासिक सौ रुपये मिल जाते थे। तीन बच्चों का पढ़ाना था। बच्चे भी सुहासिनी से इस प्रकार हिलमिल गए कि उसके आने में ज़रा देरी हुई तो ड्योढ़ी पर उसकी प्रतीक्षा करते खड़े रहते।

सुहासिनी आज तक कभी अकेली बाहर नहीं निकली।

यदि कभी किसी ज़रूरी काम पर निकलती तो कार ही में। आज-कल अकेली रिक्शे पर बैठ ट्यूशन करने जाते देख उस गली की औरतों की आंखें बरस पड़तीं। बड़े वृद्ध और पुरुष भी उसके परिवार का हाल देखकर चिन्ताकुल हो जाते। इन विषम परि स्थितियों में भी सुहासिनी गंभीर ही रहती।

किसका भविष्य कैसा है, कौन जाने ?

हस्त-सामुद्रिक और जन्मकुण्डली देख ज्योतिष-शास्त्री भले ही व्यक्ति के भविष्य का निर्णय करे, होनहार होकर ही रहत है। जैसे रेखाएं हथेली को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नापते हुए आयु, शिक्षा, संपत्ति संतान और यश की सीमाओं को निर्धारित करती हैं, वैसे ही व्यक्ति के जीवन में घटित होनेवाली घटनाए ज़िन्दगी की राह का निर्देश करती हैं।

ज़िन्दगी की राह कौन-सी है, लकीर खींचकर बताई नहीं जा सकती। कोई भी यह नहीं जानता कि उस ज़िन्दगी क आरंभ कैसे हुआ, विकास कैसे होता जा रहा है और अंत कैसे होगा ? पहले ही ज़िन्दगी की राह निर्देशित कर उसपर चलने क प्रयास करना मूर्खता है। यह राह टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई कब, कि दिशा की ओर मुड़ती है और अंत में जाकर कहां लय होती है बड़े से बड़े मेधावियों के लिए भी दुर्बोध है।

ज़िन्दगी एक धारा के समान है। वह धारा समतल भूमि को जिधर पाती है, उसी ओर अपनी दिशा को बदलकर वेग के साथ आगे बढ़ती है। यदि उसको निश्चित दिशा की ओर

मोड़ने का प्रयास किया जाए तो उस प्रदेश को भी डुवाते वहाले जाए। हां, उस प्रवाह के कुछ अंश को वांध के द्वारा कहीं रोकने का प्रयत्न अवश्य किया जा सकता है। किन्तु यह भी खतरे से खाली नहीं।

२४

सन्ध्या का समय।

ठंडी समुद्री हवा चल रही थी। सरला आरामकुर्सी पर बैठी विचारमग्न थी। अखवारवाले ने खिड़की से पेपर फेंका। उस आवाज़ ने सरला का ध्यान भंग किया। उठकर 'मेल' हाथ में लिया। समाचार पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते वह एक जगह ठिठक गई। वह एक सनसनीखेज़ खवर थी। समाचार यों था :

"कल शाम को एक दंपती ने अपने पांच वच्चों के साथ कुएं में कूदकर आत्महत्या कर ली। आज सुवह उनकी लाशें कुएं से निकाली गईं और शव-परीक्षा के लिए भेज दी गई हैं।

वताया जाता है कि उस परिवार ने केवल अपनी मानरक्षा के लिए ही यह साहस-कृत्य किया है। उस परिवार का विवरण इस प्रकार है—

त्यागराजन नामक एक व्यक्ति 'वाशरमेन पैट' में एक किराये के घर में रहता था। वह एक प्राइवेट कम्पनी का कर्मचारी था। उसकी आमदनी अपने परिवार के खर्च के लिए काफी नहीं थी। उसने इधर-उधर कर्ज़ लिया था। इसके अतिरिक्त अपने एक दिली-दोस्त से इस शर्त पर एक सौ रुपया उधार लिया था कि एक मास के अन्दर वह चुका देगा। किन्तु वह समय पर नहीं दे सका। इससे वह सदा चिन्तित रहता था।

त्यागराजन हद से ज़्यादा भावुक और स्वाभिमानी था। अपने दोस्त के सामने वह लज्जा का अनुभव करता था। कभी-कभी कहीं अचानक मुलाकात होती तो वह बचकर निकलने का प्रयत्न करता। उसके दोस्त के लिए सन्देह का कारण बना। उसने अपनी आवश्यकता के लिए एक-दो बार रुपया मांगा। जब नहीं मिला तो बराबर तकाज़ा करता गया त्याग-राजन ग्लानि से गड़ता जाता और बहुत दुःखी होता। दोस्त ने रुपये न पाकर खरी-खोटी सुनाई। एक-दो बार आवेश में आकर कुछ ऐसी बातें कहीं जो त्यागराजन के मर्म पर जा लगीं।

इसी बीच त्यागराजन की नौकरी भी छूट गई। खाने का खर्च चलना भी मुश्किल था। ऊपर से कर्ज़ का भार। उसका मन विकल हो गया। अब अपनी जीविका का कोई सहारा न पाकर उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया।

अपनी धर्मपत्नी से अपनी इच्छा प्रकट की वह बड़ी साध्वी थी। उसने सलाह दी कि आपको छोड़ हम रहना नहीं चाहते। हमारा भविष्य और भी अंधकारमय हो जाएगा। हम भी आपका साथ देने के लिए तैयार हैं। पल-भर में पति-पत्नी ने निश्चय किया। अपने पांचों बच्चों को लिए वे मद्रास से चेंगलपेट जानेवाले रास्ते में पड़नेवाले एक बड़े कुएं के पास पहुंचे। पहले उस दम्पती ने अपने दिल को पत्थर बनाकर अपने बच्चों को कुएं में ढकेल दिया और फिर आप एक-दूसरे का हाथ पकड़कर उसमें कूद पड़े। त्यागराजन ग्रेजुएट था।"

यह समाचार पढ़ते ही सरला का कोमल हृदय मक्खन की भांति पिघल गया। वह सोचने लगी कि मनुष्य की सारी समस्याओं का चिरन्तन समाधान शायद मृत्यु है, मृत्यु से प्राणी चिर शांति प्राप्त करता है। अपना-पराया, समाज और संसार उसे डरा-धमका नहीं सकते। वह मानव-निर्मित समस्त कृत्रिम बन्धनों से सदा के लिए विमुक्त होता है। जो इस प्रकार की शाश्वत स्वतंत्रता चाहते हैं, सम्भवतः वे ही मृत्यु का स्वेच्छापूर्वक स्वागत करते हैं।

यह मृत्यु भी कैसी बला है। कुछ लोग जीने के लिए तड़पते हुए दम तोड़ते हैं। कुछ लोग अप्रत्याशित घटनाओं के कारण जान से हाथ धो बैठते हैं, तो कुछ लोग स्वेच्छा से! इस प्रकार मृत्यु का मार्ग भिन्न होने पर भी परिणाम एक ही है।

सरला की विचार-परम्परा चलती ही रही। बूटोंकी आवाज़ उसे जाग्रत् किया। सुरेश हांफता हुआ आया और सरला के मने बैठ गया। उसको हांफते देख सरला ने पूछा—"अजी क्या त है? धीरे से आते?"

"नहीं सरला, घर से तार आया है।"

सरला सन्न रह गई। तड़पते हुए पूछा—"कहां से? बात या है?"

"घर से। पिताजी ने घर बुलाया है।"

"कारण क्या है? ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी है?"

"मैं क्या जानूं? आज ही चल देने का आदेश है।"

"विना कारण के? मैं भी तो जानूं, कारण क्या है?"

"यह सब लिखा होता तो मैं क्या नहीं बताता?"

"पुरुषों पर विश्वास कौन करे?"

गम्भीर होकर तार का फार्म सरला के निकट फेंकते हुए उसने कहा—"विश्वास नहीं हो तो पढ़ लो।"

सरला ने उसे हाथ में लेकर पढ़ा। उसका मन अस्थिर होने लगा। उसके हृदय के किसी कोने में सन्देह भी जाग उठा। तुरन्त पूछ बैठी—"यह तार तुम्हारा बनाया हुआ तो नहीं है?"

"तार बनाकर क्या पाऊंगा?"

"क्या जाने? किसके दिल में क्या बैठा है?

सुरेश तड़पकर बोला—"मुझपर शंका करती हो?"

"कारण साफ दिखाई दे रहा है न !"

नरम होते हुए सुरेश बोला—"सरला मैं सच बतला रहा हूं। मैं इसकी बाबत कुछ नहीं जानता। शायद हो सकता है, मेरी माता बीमार हो। उसे रक्त-चाप की शिकायत है बहुत दिनों से। अब उसका प्रकोप हुआ हो, वरना पिताजी मुझे कभी तार नहीं देते। मैं जल्दी ही लौटूंगा। अधीर मत बनो !"

"मुझे इस हालत में छोड़कर जाओगे ?"

सुरेश ने सरला की ठोड़ी पकड़े प्यार जताते हुए कहा—"पगली, घबराती क्यों हो ? यह सुरेश तुम्हारा है। इसे कोई छीन नहीं ले जाएगा।"

"क्या पता, कोई अपने जाल में फंसावे तो ?"

"औरतों का स्वभाव ही हमेशा आशंका प्रकट करना होता है। सोचा था, तुम इसकी अपवाद हो। लेकिन मेरा विचार गलत निकला।"

"न मालूम क्यों मेरी दाईं आंख फड़क रही है। सुरेश, तुम आज मत जाओ। मेरी बात सुनो; कल मैं खुशी-खुशी तुम्हें भेज दूंगी। यकीन करो।"

"नहीं सरला, कोई बहुत बड़ा कारण होगा। तभी तो पिताजी ने तार दिया है। मेरी माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी हो, क्या पता ? अन्तिम समय भी पास न रहा तो वह बहुत दुःखी होगी। तुम बेफिक्र रहो, दो-चार दिन में मैं वापस लौटूंगा। गाड़ी का

समय भी होता जा रहा है। लो, ये सौ रुपये तुम अपने पास रखो। चलता हूं।

सरला से कुछ कहते न बना। ज़िन्द करने पर भी सुरेश रुक जाने के मूड में नहीं है। इसलिए वह मौन धारण कर निश्चेष्ट कातर नेत्रों से सुरेश की आंखों में ताकती रही—उसकी आंखों में याचना थी, पार लगाने की कामना थी।

सुरेश सरला से विदा ले तेज़ी के साथ कदम बढ़ाते चल पड़ा। सरला देखती रही। सुरेश के ओझल होते ही उसने गहरी सांस ली।

सरला किवाड़ बंद कर बिस्तर पर पड़ी रही। उसके मन-रूपी सागर में असंख्य भावना-रूपी तरंगें उठ-उठकर किनारे से टकराकर चूर-चूर होने लगीं।

२५

डाक्टर राजू के 'नर्सिंग होम' में रोगी डाक्टर की प्रतीक्षा में बेंच पर बैठे हुए हैं। नर्सिंग होम से लगा उनका घर भी है। डाक्टर घर के भीतर से कुछ मेहमानों के साथ फाटक तक आए। उनसे हाथ मिलाकर उन्हें विदा किया।

अतिथि कार पर जा बैठे। दूसरे ही क्षण वह तेज़ी से आगे बढ़ी। डाक्टर राजू ज्यों ही भीतर आए त्यों ही विमाता के चेहरे

पर क्रोध टपकते देख ठिठक गए। राजू के निकट आते ही वे बिगड़ पड़ीं :

"आखिर तुमने हमारी नाक कटाकर ही दम लिया। हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, तुमने इस प्रकार बदला लिया।"

"अम्मा, तुम यह क्या कह रही हो ? मेरी इच्छा कोई चीज़ नहीं ?"

"तुम्हारी इच्छा ! पचास हज़ार रुपयों पर पानी फेर दिया। तुम उसका मूल्य नहीं जानते हो ?"

"तो रुपये के लोभ में पड़कर मैं उस काली-कलूटी बनावटी लड़की से शादी करूं ?"

"रंग लेकर क्या करोगे ? चाटोगे ? गुण चाहिए।"

"मां ! केवल गुण ही प्रधान नहीं, शिक्षा भी होनी चाहिए।"

"तुम्हारी आशाओं का कोई अन्त भी तो है ? मैं पढ़-लिख-कर ही यह घर-गृहस्थी संभाल रही हूं ?"

"नहीं मां, मैं चाहता हूं कि लड़की गुणवती, रूपवती और सुशिक्षिता हो।"

"तो तुम्हें रुपये-पैसे की कोई ज़रूरत नहीं ? यही न ? तुम्हारी पढ़ाई में बीस हज़ार खर्च हुए हैं। कम से कम उतना भी न ले, तो हमारी बिरादरी में खानदान की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी।"

"मां, तुम गलत समझ रही हो। प्रतिष्ठा दहेज लेने में नहीं,

बल्कि त्यागने में है। लड़कीवाले पिता दहेज न दे सकने के कारण तबाह हो रहे हैं। लड़कियों को अभिशाप मानकर आठ-आठ आंसू रोनेवाले इस समाज में कितने ऐसे पिता हैं जो कि धन के अभाव में अपनी लड़कियों को लूले-लंगड़े, कुरूप और चरित्रहीनों के गले में बांधकर सन्तोष की सांस लेते हैं। कितनी ही होनहार लड़कियों का भविष्य इस तरह अन्धकारमय होता जा रहा है। उनमें हम किसी एक लड़की का ही सही उद्धार कर सके तो उस लड़की का पिता दिल खोलकर हमें आशीष देगा।"

"वाह! तुम्हीं एक लड़कियों का उद्धार करने निकले। यह सब पागलपन छोड़ हमारी बात मानो।"

"अम्मा, इस विषय में मैं आपकी बात नहीं मान सकता। गुस्ताखी के लिए माफ करना।"

"छिः, मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम इस प्रकार हमारा अपमान करोगे। घर आए हुए लड़कीवाले बाप के सामने कोई यह कहता है कि मैं शादी नहीं करूंगा। शादी नहीं करोगे तो क्या संन्यासी बन जाओगे?"

"मैं यह नहीं कहता कि कभी भी शादी नहीं करूंगा। मैं यह कहता हूं कि अपनी पसन्द से शादी करूंगा।"

"माता को दुःखी बनाकर तुम क्या सुख भोगोगे? तुम्हें लिखा-पढ़ाकर बड़ा किया। तुमपर कई आशाएं रखीं तो अपनी ही माता को यह जवाब देते तुम्हें शरम नहीं आती?"

"शर्म किस बात की ? मैंने कोई अपराध नहीं किया, जिसके लिए मैं शर्म करूं। अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल आपको खुश करने के खिए शादी करके जीवन-पर्यंत पश्चात्ताप करता रहूं ? क्या अपनी पसंद की लड़की के साथ विवाह करके शान्ति के साथ जीवन-यापन करना आपसे देखा नहीं जाता ?"

"राजू, तुम अपनी सीमा पार करके बात करते हो। कोई माता-पिता अपनी संतान की बुराई नहीं चाहता। किसीको धन काटता नहीं। मैं यही चाहती हूं कि तुम ऐसी जगह शादी करो जहां से अधिक से अधिक दहेज मिलने की सम्भावना हो।"

"मैंने कह दिया, इस विषय में मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। मुझे तंग न कीजिए।" राजू ने दृढ़ता से कहा।

"हम कुछ नहीं हैं, हमारी इच्छा कोई चीज़ नहीं, यह न ? तो याद रखो, इस सम्पत्ति से तुम्हें एक कौड़ी भी नहीं मिल सकती।"—विमाता बरस पड़ी।

"मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं।"

"छिः, मैं अपने जीते यह क्या सुन रही हूं। मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हारा मुंह तक देखना नहीं चाहती। तुम्हारे पिता होते तो क्या ऐसा कह सकते थे ?"

"मां, मुझे दोष न दो। तुम्हीं लोग इस घर में आराम

से रहो। मैं कहीं चला जाऊंगा······"

"यही तुम्हारी पढ़ाई का संस्कार है?"

"नहीं तो, हर दिन का यह खटराग क्यों?"

"मैं अब घर-गृहस्थी संभाल नहीं पाती हूं—बहू आए तो सारा भार उसे सौंपकर राम-नाम जपते आराम करना चाहती हूं।"

"तुम्हारे मन में शान्ति कब होगी। लोगों को रुलाने और भड़काने में तुम्हें मजा आता है। बहू आएगी तो उसे भी नोच-नोचकर खा डालोगी। इसीलिए जल्दी बहू चाहती हो।"

"राजू! बढ़-बढ़कर बातें न करो। चले जाओ यहां से।"

"मैं यही चाहती हूं; इस नरक से जब तक बाहर निकल न जाऊं तब तक मुझे शान्ति ही नहीं है। यह सोचकर मैं यह सब सहन करता गया कि पिताजी नहीं हैं, और बाकी सब छोटे बच्चे हैं। वरना मैं कभी का चला जाता।"—राजू यह कहकर तेजी के साथ आगे बढ़ा।

किन्तु विमाता की पुकार सुनकर रुक गया।

राजू को जाते देख विमाता नरम पड़ गई। पिघलते हुए कहा—"राजू, मैं सौतेली मां हूं। इसीलिए मुझपर ये आरोप लगा रहे हो। मैं जानती हूं दुनिया की नजरों में मैं तुम्हारी मां कभी नहीं हो सकती। लेकिन मैं तुम्हारी दृष्टि में भी

माता नहीं बन सकती।"—विमाता अपने आंचल से आंसू पोंछने लगी।

"अम्मा, तुम्हीं सोचो, मैं तुम्हारी किसी बात में खलल नहीं डालता हूं, और न डालना चाहता हूं। केवल मैं यही तुम लोगों से चाहता हूं कि मेरी शादी के मामलों में ज़ोर-ज़बरदस्ती न करो।"—राजू ने नम्र होकर कहा।

विमाता ने सोचा कि अब रोब जमाने से काम नहीं चलने का है। प्रेम से ही परिस्थिति को काबू में लाया जा सकता है। नरम पड़ते हुए बोली—"माता-पिता अपनी संतान की भलाई ही चाहते हैं, बेटा। तुम दहेज लो, या न लो, हमारा क्या जाता है!"

"विवाह एक पवित्र और स्नेह-बंधन है। मां! जीवन-भर शान्ति और सुख का अनुभव करना चाहे तो दंपती में आकर्षण हो और परस्पर एक-दूसरे के हृदयों को भली-भांति जानें और समझें। दोनों के मन तभी मिलते हैं जब एक-दूसरे को पसन्द आए, वरना जीवन जीवन न होकर नरक बनेगा। ऐसा न होकर शादी के बहाने युवती-युवकों के विचारों के विरुद्ध शादी का संस्कार पूरा किया जाए तो वह बंधन दोनों के गले में फांसी बनकर आखिर उनकी जान का ही खतरा बन जाएगा।

"अब पुराने दिन लद गए हैं। आज लड़की भी अपनी इच्छा के विरुद्ध शादी नहीं करती, तुम तो लड़कों को लेकर

शिकायत करती हो।"—राजू ने मौका पाकर समझाया।

राजू की बातों का प्रभाव विमाता पर पड़ा, ऐसा तो नहीं कह सकते, हां वह शान्त ज़रूर हो गई लेकिन अपने कथन का समर्थन करते बोली—"हम अपने बच्चों की भलाई की बात सोचते हैं, वे नहीं चाहते तो उसमें हमारा क्या दोष? ज़िन्दगी में कभी ऐसा मौका आएगा, उस वक्त ज़रूर हमारी बातों को याद कर पछताएंगे। मैं बूढ़ी हो चली; आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों मुझे अपनी अन्तिम तैयारी करनी है।"

विमाता ने विरक्ति जताई। राजू हंसते हुए नर्सिंग होम में गए।

२६

दो बजे का समय था। कड़ी धूप थी। डाक्टर राजू किसी रोगी को देख अपनी कार में घर लौट रहे थे। सुहासिनी एक पेड़ की छाया में खड़ी रिक्शे का इन्तज़ार कर रही थी। आधे घंटे से वहीं खड़ी रही। लेकिन उधर से कोई रिक्शा नहीं गुज़रा। उसके पैर दुखने लगे। वह थक गई थी। रिक्शे के आने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं दी। कोई चारा न था। एक-एक मिनट उसे एक घंटे के समान प्रतीत होने लगा। कोई

साप्ताहिक पत्र वह अपने हाथ में लाई थी। उसमें 'संयुक्त राष्ट्र संघ' पर कोई अच्छा लेख छपा था। आज वह बच्चों को पढ़ाकर सुनाना चाहती थी। इसलिए समय काटने के विचार से उसके पन्ने उलटने लगी।

अपने समीप किसी कार के रुकने की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ी। कार से उतरते हुए डाक्टर राजू हंस रहे थे। सुहासिनी के निकट पहुंचकर डाक्टर ने उसे कार पर चढ़ने को कहा सुहासिनी पहले सकुचाई। लेकिन वह विवश थी। पिछली सीट में जा बैठी। कार हवा से बातें करने लगी। डाक्टर ने एक-दो बार कुछ कहा। सुहासिनी सुनती रही, लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया।

घर पहुंचते ही डाक्टर ने आकर दरवाज़ा खोला। सुहासिनी उतर पड़ी। शिष्टाचार के नाते उसने हंसते हुए धन्यवाद दिया। डाक्टर उसकी ओर देखते हुए हंसते रहे।

विमाता घर पर डाक्टर की प्रतीक्षा में बैठी थी। प्रतिदिन राजू ठीक एक बजते ही मेज़ पर जा बैठते थे, और खाना परोसने का आदेश देते थे। आज राजू ने देखा, विमाता कुछ नाराज़-सी लगी। उसने सोचा कि सुबह की घटना वह भूली नहीं, खाना मांगने पर और भी बिगड़ उठेगी और सुहासिनी के सामने उसकी फजीहत होगी। यह सोचकर डाक्टर सीधे अपने कमरे में गए, कपड़े बदलकर आराम करने लगे।

विमाता ने बड़ी देर तक इन्तज़ार किया। राजू को न आते

देख उसने बच्चों से बुला लाने को कहा। फिर भी राजू का साहस न हुआ कि जाकर मेज़ पर बैठे। इसके पूर्व जब कभी राजू के आने में देरी होती तो खुद विमाता उसके कमरे में आकर बुलाती। आज उसके न बुलाने पर राजू को शंका और भी प्रबल हो गई।

विमाता के दिल में भी वह कांटा बैठ गया कि राजू नाराज़ है। पर उसको खाना न खाते देख वह रह नहीं सकी। राजू के कमरे के पास पहुंचकर उसने पूछा—"राजू, खाना नहीं खाओगे ?"

"मुझे भूख नहीं है, मां !"—राजू बोला।

"भूख क्यों न होगी, ढाई बजने जा रहा है।"

राजू ने एक बार झूठ बोल दिया था, अब कैसे जाता, वह अपनी बात पर डटा रहा। विमाता हार मानकर चली गई।

विमाता चाहे रुपये-पैसे के मामले में कितनी ही लोभी हो, लेकिन वह माता का हृदय रखती थी। उसके भी चार बच्चे थे। आज तक उस घर में कोई रूठकर बिना खाए लेटा नहीं रहा था। इसकी कल्पना-मात्र से उसकी आंखें छलछला आईं। उसे सन्देह होने लगा कि शायद राजू सुहासिनी के घर खा आया हो। लेकिन वह यह भी जानती थी कि राजू पराये घर में कभी नहीं खाता है। फिर शंका हुई, खाने न गया तो दो बजे तक क्या करता रहा। कभी भी वह इस वक्त तो बाहर ही

न जाता, यदि किसी ज़रूरी केस को देखने जाता भी तो एक बजे तक लौट आता था। लौटते वक्त भी वह किसीको अपनी कार में बिठाकर घर न लाता। आज सुहासिनी को अपनी कार में बिठाकर साथ लाया है। उनका हंस-हंसकर बात करना इत्यादि याद आते ही उसका दिल विद्रोह कर बैठा। उसके मन में तरह-तरह की कल्पनाएं उठीं। दोनों जवानी में हैं। जवानी क्या-क्या नहीं कराती। बड़े-बड़े महात्मा-साधू भी फिसल जाते हैं।

उसका क्रोध बढ़ता ही गया।

उसने फिर सोचा, यह क्रोध दिखाने का समय नहीं। इससे और भी बात बिगड़ जाएगी। अब सहनशीलता से ही काम लेना है। सोचते-सोचते उसके दिमाग में एक अच्छी कल्पना चमक उठी। वह नकली प्रसन्नता को अपने चेहरे पर चमकाते बच्चों के कमरे में पहुंची। बच्चे सुहासिनी को चारों तरफ घेरकर तरह-तरह के सवाल पूछ रहे थे और वह बड़े सब्र के साथ जवाब दे रही थी।

विमाता ने सुहासिनी के चेहरे को ध्यान से देखा, उसमें कोई विकार उसे दिखाई नहीं दिया। बल्कि गहरी प्रशांतता और और पवित्र स्नेह टपक रहा था, पल-भर के लिए वह अपनी इस कल्पना को मन में लाने के कारण अपने-आप को कोसने लगी। लेकिन दूसरे ही क्षण राजू के न खाने पर उसका दिल छटपटाने लगा। इस विशालकाय व्यक्ति की मोटी तोंद की चर्बी की तहों

में यह ममता कहां रेंग रही थी, बता नहीं सकते, पर वह बेचैन थी, राजू को खिलाने के लिए वह हर उपाय को काम में लाएगी।

यह निश्चय कर सहमते हुए सुहासिनी से पूछा—"बेटे राजू ने अभी तक खाना नहीं खाया है।"

"क्यों मां?" सुहासिनी ने जिज्ञासा से पूछा।

"मालूम नहीं होता, कहता है कि भूख नहीं है।"

"शायद कहीं खाया हो, पूछकर देखिए न।"

"ना बेटी, कहीं नहीं खाता। अगर खाया होता तो बत देता, लेकिन झूठ नहीं बोलता।"

"तो फिर बुलाइए न।"

"मैंने बुलाया, आता नहीं, तुम बुलाकर देखो तो।" सकु चाते हुए विमाता बोली।

सुहासिनी इस अप्रत्याशित प्रश्न पर चौंक पड़ी। उस मन में द्वन्द्व मचने लगा—उसका और डाक्टर का क्या सम्ब है? मुझे इसका पांसा क्यों बना रही है? यह कोई शतरंज तो नहीं जिसमें जाकर अटक जाऊं? डाक्टर से परिचय ज़रूर है, इस परिचय को लेकर वह उसे कैसे मनाएगी। नहीं माने तो! अगर न बुलाऊं तो विमाता दुःखी होगी। उसका मुझ पर यकीन है। कोशिश करके देखूंगी। शायद मान जाएं। दो रूठे हुओं को मिलाना बुरा तो नहीं कहा जा सकता। विमाता ने मुझसे कभी ऐसी बात नहीं कही। आज उसके लिए ज़रूर

मुझे यह कार्य करना होगा।

सुहासिनी विमाता की आंखों में प्रश्नार्थक दृष्टि से देखते हुए बोली, जिसमें यह भाव था, मैं तुम्हारे लिए ज़रूर पूछूंगी, परिणाम मैं नहीं जानती, पर सब कुछ करूंगी।

"मां, ज़रूर बुलाऊंगी, तुम्हारे लिए ज़रूर बुलाऊंगी।"

सुहासिनी राजू के कमरे की तरफ बढ़ी। उसको एक-एक कदम आगे बढ़ने में ऐसा अनुभव होने लगा मानो पैरों में बहुत भारी लोहे की सांकलें डाल दी गई हों।

द्वार पर पहुंचकर खड़ी हो गई। देखा, राजू आरामकुर्सी पर लेटे गहरी सोच में है। अपने आने की सूचना देने के लिए सुहासिनी ने गला खंखारा। राजू ने देखा, सुहासिनी दरवाज़े पर खड़ी है, उसके वदन से निर्मलता और प्रसन्नता फूट रही है।

राजू ठीक से बैठते हुए बोला—"आओ सुहासिनी, बैठो।"

"मैं बैठने के लिए नहीं आई, आपसे एक ज़रूरी बात पूछने आई हूं।"—सुहासिनी ने शान्त चित्त हो कहा।

"पूछो, एक क्या, सौ बातें पूछो।"

"पहले वचन दीजिए।"

"मुझपर विश्वास नहीं?"

"विश्वास की बात नहीं, शायद बाद को टाल दें तो!"

"यकीन न हो तो लाओ अपना हाथ!"

"ज़रूरत नहीं, आपका कहना काफी है।" गंभीर हो सुहासिनी बोली।

राजू ने सोचा कि सुहासिनी उससे शादी की बात पूछेगी, उसका दिल उछलने लगा। उमंग में आकर कहा—"अच्छा, भई, मैं वचन देता हूं। तुम जो भी कहोगी, उसका पालन करूंगा।"

"यह तो बताएं, खाना क्यों नहीं खाया।"

"मेरा मन उदास है, सुहासिनी! आज माताजी से शादी के सम्बन्ध में झड़प हो गई। मां नाराज़ मालूम होती हैं। थोड़ा समय जैसे-तैसे काट दूं तो शाम तक सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

"लेकिन आप यह नहीं जानते कि घर में कोई खाना न खाए तो औरत का दिल कैसे तड़पता है!"

"इसमें तड़पने की क्या बात है? भूख न रहे तो क्या किया जाए!"

"भूख लगती क्यों नहीं, यही तो जानना चाहती हूं!"

अपनी शादी के प्रसंग को यादकर डॉक्टर का दिल उमड़ पड़ा। पिघलते हुए कहा—"सुहासिनी, तुम नहीं जानतीं, मैं इस घर में कितना परेशान हूं!"

"परेशान होने की क्या जरूरत है? आपको किस बात की कमी है?"

"तुम नहीं जानतीं, यहां तक कि मैं शादी भी अपनी

इच्छा से नहीं कर पा रहा हूं।"

"अपनी अम्मा को समझाइए, मान जाएंगी।"

"यही तो सभी बुराइयों की जड़ है। इसी बात को लेकर आज वाद-विवाद हुआ। मैं इसी कारण खाने की इच्छा नहीं रखता हूं। जहां दिल दुःखी है, वहां कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती। सब फीकी ही मालूम होती है।"

"तो अपनी पसन्द की लड़की से शादी कर लीजिए, मामला खतम!"

"वह माने तब न। मनाने की कोशिश कर असफल रहा। दूसरी विडंबना यह है कि मैं जिस लड़की से प्यार करता हूं, वह मुझे प्यार करती है कि नहीं, आज तक नहीं जान पाया। औरत अपने दिल को छिपाती है।"

"पूछकर देखो, अगर वह मान जाएगी तो माताजी को भी मना सकते हैं।"

"वह युवती बुरा मान जाए तो?"

"उसके मां-बाप के ज़रिए पता लगा सकते हैं!"

"मां-बाप न हों तो।"

"इसका तो जवाब मैं नहीं दे सकती। इतना कह सकती हूं कि ऐसी हालत में सीधे उस युवती से ही पूछना बेहतर है।"

"वह युवती तुम हो तो……"

सुहासिनी चौंक उठी। उसका चेहरा विवर्ण हो गया। गम्भीर हो बोली—"डॉक्टर, मेरा परिहास कर रहे हैं?"

"नहीं सुहासिनी अपने दिल की बात बता रहा हूं।"

"दूसरे के दिल को भी जानने की जरूरत नहीं ?"

"दूसरे के दिल में क्या है, कैसे जाना जा सकता है ? यही तो मैं बता रहा था। क्या दूसरे के दिल को जाने बिना प्रेम करना अपराध है ?"

"अपराध तो नहीं कह सकती, लेकिन प्रेम दोनों तरफ से फलता है। अन्यथा वह काम कहलाता है।"

"तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो ?"

"क्यों नहीं, ज़रूर करती हूं......"

राजू का चेहरा खिल उठा।—"मैं कितने दिनों से तुम्हारे मुंह से यह बात सुनने की प्रतीक्षा करता रहा, प्यारी..."—राजू बोला।

"ओहो, औरत के कोमल कंठ से प्रेम शब्द का नाम सुनकर पुरुषों की बांछें खिल जाती हैं। लेकिन उस नशे के उतरते ही वे घृणित रूप में सामने आते हैं। अपने काले दिल पर मुहब्बत-रूपी सोने का मुलम्मा चढ़ाकर ऐसा अभिनय करते हैं कि देखनेवालों को लगता है, वे जिसपर फिदा हैं उसके लिए जान ही दे रहे हैं।"—सुहासिनी गम्भीर हो गई।

"मैं ऐसा व्यक्ति नहीं हूं, सुहासिनी ! मैं दिलो-जान से तुम्हें प्यार करता हूं।"

"क्यों नहीं, डॉक्टर सबसे प्यार करता है।"

"मेरी समझ में नहीं आता, तुम क्या कह रही हो।"

"धीरे से समझ में आएगा।"

"कितने दिन तक प्रतीक्षा करूं?"

"जितने दिनों की ज़रूरत पड़े।"

"मैं यह सारी तपस्या तुम्हारे लिए कर रहा हूं।"

"हां-हां, ये तो मर्दों की आए-दिन की बातें हैं।"

"रोज़ एक पर जान देते हैं, दिन में कई बार मरते हैं, मर-मरकर जीते हैं। जी-जीकर मरते हैं। इस चक्कर में न मालूम कितनी अबोध लड़कियों के दिल पिस जाते हैं, क्या कहा जाए!"

"सुहासिनी, मैं ऐसा नीच नहीं हूं—मैंने आज तक किसीसे प्रेम नहीं किया। जिस दिन तुम्हें देखा, उसी दिन से मैंने तुम्हें अपने दिल में बसाया। तब से तुम्हारी ही प्रणय-मूर्ति की आराधना कर रहा हूं।"

"फिर भावावेश में कविता कहने लग गए। आपका प्रेम करना काफी नहीं है। मुझे भी तो करना होगा!"

"अभी तुमने कहा, प्यार कर रही हूं।"

"मैं प्राणी-मात्र से प्यार करती हूं, जिसमें कोई विकार नहीं है।"

"आखिर मुझमें किस बात की कमी है? मेरे प्रेम का तिरस्कार क्यों करती हो?"

"हृदय केवल किसीके रूप, पद और धन पर ही नहीं रीझता, उसे अनुभूति की भी आवश्यकता है। हठात् कोई

किसीको देख प्यार करने लग जाए तो वह प्रेम नहीं, आकर्षण है, काम है, वासना है। ऐसे तो हर युवक अनेक युवतियों की ओर आकृष्ट हो सकता है।"

"सुहासिनी, तुम जो भी कहो, मैं तुमसे प्यार करता हूं, तुम्हारे विना मेरा जीवन अंधकारमय हो जाएगा। मैं सच्चे दिल से प्यार करता हूं, यकीन करो।"

"डॉक्टर, आप भूल कर रहे हैं, पल-भर में निर्णय कर दिल किसीको सौंपा नहीं जाता है। सच्चे प्रेम में चंचलता नहीं स्थिरता होती है, विवेक होता है और होती है आत्मसर्पण की भावना।"

"तब तो मेरे प्रेम का तिरस्कार करोगी? सुहासिनी, सुहासिनी…"उसे पकड़ने आगे बढ़ा। झपटकर उसे अपनी वाहुओं में ले लिया।

सुहासिनी पराये पुरुष के स्पर्श-मात्र से सिंहनी बनी। नारी सहज आक्रोश से गरज उठी—"डॉक्टर, विवेक खोकर पशु जैसा व्यवहार न करो।"—यह कहकर उसने एक झटका दिया, दूसरे ही क्षण वह कमरे से बाहर थी। तेज़ी से घूमते समय चौखट से उसका सर टकराया और खून के छींटे उछलने लगे।

बड़ी देर तक डॉक्टर के कमरे से सुहासिनी को न लौटते देख विमाता की शंका और भी बढ़ गई उसने खिड़की पर लगे कर्टेन को उठाकर देखा, सुहासिनी राजू की वाहुओं में है।

वह देख नहीं पाई। उसका सारा क्रोध उबल पड़ा। वह आंखों के होते हुए भी अंधी हो गई।

सुहासिनी को उचित सबक सिखाने का निश्चय कर वह ज्योंही घूमकर दरवाज़े के पास पहुंची त्योंही सुहासिनी बाहर आ गई। बिना सोचे समझे विमाता सुहासिनी की वेणी पकड़कर खींचती-घसीटती फाटक तक ले गई। इस बीच चार-पांच चपतें भी लगाईं; तब भी क्रोध शान्त न हुआ तो ज़ोर से वेणी को पीछे की तरफ खींचकर आगे ढकेल दिया कि सुहासिनी का माथा दीवार से टकराया। वह माथा पकड़े कलप ही रही थी कि विमाता ने ऊपर से गालियों की बौछार की :

"डायन कहीं की...तूने अपने प्रेम जाल में फंसाया, ऊपर से सीधी दिखाई देती है! तूने उसे बिगाड़कर दम लिया, इसलिए वह पचास हज़ार रुपये को लात मार रहा है, तेरा तिरिया-चरित्र जानती न थी।

"हमारा नमक खाकर इसी घर को डुबोना चाहती है, आगे फिर कभी इस घर में कदम रखा तो तेरी हड्डी-पसली तोड़ दूंगी। तेरे कारण मेरी सोने की सी गृहस्थी में फूट पैदा हो गई है। मुंहजली, जा यहां से, चली जा!"—गरजते हुए पागल की भांति पीटने लगी।

यह सारी घटना पल-भर में हो गई। राजू स्वयं अपनी विवेकशून्यता पर पछता रहा था। ऊपर से यह वज्रपात देख

राजू का दिल बैठ गया। एक छलांग में विमाता के निकट पहुंचकर उसे हटाते हुए बोला :

"मां, यह तुम क्या कर रही हो, वह मानवी नहीं, देवी है। तुमने उसपर हाथ चलाकर बहुत बुरा किया, दूसरा होता तो उसका ख़ून पी जाता।" राजू क्रोधावेश में हांफने लगा।

विमाता अपनी ज़बान चलाती रही। राजू भी डटकर उन सबका उत्तर देता रहा। उसे घर में भेजकर देखता क्या है, सुहासिनी अपने दोनों हाथों से मुंह छिपाए रोती-बिलखती पैदल चली जा रही है। खून की बूंदें सुहासिनी के मार्ग का शेष-चिह्न बनी दीख रही थीं। राजू खून के आंसू पीकर देखता ही रहा।

२७

सुहासिनी पलंग पर लेटी हुई है। उसके माथे पर पट्टी बंधी हुई है। अपमान, चिन्ता और ग्लानि से उसका कोमल हृदय ऐसा घायल हुआ है कि वह उस व्यथा को भूलने का प्रयत्न करके भी भूल नहीं पा रही है। वह दूसरों का उपकार करने चली तो अपकार का सामना करना पड़ा। यह कैसी विडंबना है !

इस घटना ने सुहासिनी पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह

रोग-ग्रस्त हुई। वह सदा-सर्वदा चिन्तित रहती। न समय पर खाना, न समय पर सोना! ऊपर चौबीसों घण्टे चिन्ता सवार, इस तरह दिन-ब-दिन उसका स्वास्थ्य गिरता ही गया। जीवन से वह विरक्त रहने लगी। वह सोचती कि अब वह किसके लिए जिए। उसका लक्ष्य क्या है? उसे इसका कोई उत्तर न मिलता। दुनिया सूनी-सूनी दिखाई देती। हृदय भी शून्य मालूम होता। उत्साह का रस सूख गया। अतः वह खोई-सी रहती।

सुहासिनी का चिन्ताग्रस्त होना घर-भर के लोगों के लिए बड़ी समस्या बन गई। चिकित्सा चलती रही लेकिन उसका फायदा दिखाई नहीं देता था। राजाराम और सीतालक्ष्मी सुहासिनी की सेवा में कोई कसर नहीं रखते थे। सुहासिनी ही दोनों का आधार बन गई थी। उसको देखकर ही वे प्रसन्न रहते और अपने जीवन को सरस बनाते।

शाम का समय था। राजाराम ने सुहासिनी को दवा पिलाई। चिन्तित वदन से सुहासिनी को पंखा झलता रहा। सुहासिनी ने एक-दो बार मना भी किया लेकिन राजाराम से सहा नहीं गया। राजाराम के चेहरे को सुहासिनी ने ध्यान से देखा लेकिन उसमें कहीं वासना, कृत्रिमता और आकांक्षा दिखाई नहीं दी बल्कि निर्लिप्तता, श्रद्धा और सात्त्विक स्नेह-भावना दृष्टिगोचर हुई। उसने सोचा—आह, राजू और राजाराम में कितना अन्तर है! एक सुशिक्षित, दूसरा अर्ध-

शिक्षित ! एक अहंकारी, दूसरा स्वाभिमानी। अच्छाई की कसौटी कौन है ? व्यक्ति आदर्श की बातें कर सकता है, चिकनी-चुपड़ी बातें करके दूसरों की दृष्टि में तात्कालिक रूप में बड़ा समझा जा सकता है लेकिन परिस्थिति के सामने व्यक्ति सच्चे रूप में प्रकट होता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो दूसरों की सुन्दर सम्पत्ति लूटने की आकांक्षा रखते हैं, तो कुछ लोग उस सम्पत्ति के पोषण में मदद पहुंचाते हैं। दूसरे वर्ग के लोग अन्य लोगों की रूप, गुण और यश-रूपी सम्पत्ति देख आप प्रसन्न होते हैं और अन्य को उसका परिचय भी देते हैं। यह सब व्यक्ति के भीतर जो दृढ़ चेतना है, वही संचालित करती है।

सुहासिनी इस विचारधारा में खो गई। पंखे की शीतल वायु ने उसे सुपुप्त जगत् में पहुंचा दिया।

सुहासिनी को सोते देख राजाराम वहां से उठा और बगल में स्थित अपने कमरे में गया। सीतालक्ष्मी पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। राजाराम को देख उसने चर्चा छेड़ दी।

"बेटा, क्या से क्या हो गया !"

"अमीरों के यहां क्या-क्या नहीं होता है, मां !"

"अमीर हुए तो ? औरतों का अपमान कर सकते हैं ?"

"धन-बल और पशु-बल उन्हें अन्धा बनाता है मां !"

"कैसे दुर्दिन देखने पड़ रहे हैं बेटा !"

"ज़िन्दगी की राह कैसी होती है, कौन जानता है, मां !"

"मैं सोचती हूं, अब सुहासिन का विवाह करना अच्छा होगा। वह कितने दिन इस तरह अपना जीवन बसर कर सकती है? दुनिया क्या सोचेगी? हम कब तक उसका विवाह किए बिना घर में बिठा सकते हैं? उसके पिता भी नहीं रहे, हम ही लोगों को उसके विवाह का प्रबन्ध करना होगा।"

"ठीक कहती हो, मां! कहीं सुहासिनी के योग्य अच्छा सम्बन्ध देखकर विवाह करेंगे। इस मामले में उसकी भी राय लेना ठीक होगा।"

"हम घर में बैठे चिन्ता करते रहेंगे तो काम नहीं चलेगा, बेटा, कहीं अच्छे वर को ढूंढ़ना है। तुम भी हमेशा इस बात को मन में रखो। कोई न कोई अच्छा सम्बन्ध हाथ लग ही जाएगा।"

"मैं तो कोशिश करूंगा ही, लेकिन सुहासिनी के योग्य पुरुष बहुत कम मिलेंगे, मां! धनी परिवार का वर मिल सकता है। लेकिन हम मोटी रकम दहेज देकर उसे खुश नहीं कर सकेंगे। यदि ऐसा व्यक्ति मिल भी जाए, तो वह चरित्रवान हो, ऐसा तो नहीं कह सकते। सुहासिनी का जीवन सुखमय नहीं होगा। उसको दुःखी देख हम सब भी खुश नहीं रह सकते। इसलिए धनी की अपेक्षा चरित्रवान पुरुष को ढूंढ़ना बेहतर है। उसकी आमदनी डेढ़ सौ दो सौ की भी हो, वे मज़े में दिन काट सकते हैं। सुहासिनी तो गृहलक्ष्मी है। वह अपने गृह को स्वर्ग-तुल्य बनाएगी। हम भी कभी-कभी उसके यहां हो आ

सकते हैं। हमारा सम्बन्ध हमेशा वना रहेगा। ऐसा न होकर आनेवाला व्यक्ति घमंडी हो तो हम उस घर में कदम भी नहीं रख सकते। अपनी सुहासिनी को देखे विना हम लोग कैसे रह सकते है, मां! उसका और कोई है ही कहां? हमको भी दूर पाकर वह वहुत दुःखी होगी। उसका दुःख मैं नहीं देख सकता। वह जिस घर में जाएगी, वह घर फलता-फूलता रहेगा और शान्ति तथा आनन्द का निलय होगा। ऐसी पुत्री को जन्म देकर मामा धन्य हुए। वे जहां भी रहेंगे उनकी आत्मा प्रसन्न ही रहेगी।"

"सुहासिनी को पराये घर कैसे भेज सकते हैं, वेटा? फिर सरला को देखनेवाला कौन रहेगा? ऐसा नहीं हो सकता। मेरे भाई का यह घर खाली ही रहेगा? यह कभी नहीं हो सकता। मेरे भाई का नाम तक मिट जाएगा?"

"तव क्या किया जाए, तुम्हीं वताओ न?"

"मैं सोचती हूं कि हम ऐसे वर को ढूंढ़ें जो यहीं पर रह सके। इस घर को छोड़ने में सुहासिनी का दिल भी वैठ जाएगा। सरला की देख-रेख भी नहीं हो सकेगी।"

"मैं मानता हूं, कोई आकर यहां रह सके, उससे वढ़कर हमें क्या चाहिए? हम दोनों कहीं चले जाएंगे। लेकिन अव सवाल यह है कि सुहासिनी को शुद्ध हृदय से प्यार करनेवाला गुणवान व्यक्ति मिले। चाहे आमदनी कम भी क्यों न हो। सुहासिनी संभाल लेगी।"

"तब तो ये सब गुण तुममें भी हैं। तुम उससे विवाह करने को तैयार हो क्या ?"

"अम्मा, मैं ? यह तुम क्या कहती हो ? तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हुआ ? सुहासिनी के साथ मेरा विवाह ? यह कभी संभव नहीं। मैं नीच, पतित और अयोग्य हूं। सुहासिनी देवी, पवित्रात्मा और योग्य है। हम दोनों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। उसकी कल्पना तक करना मूर्खता की बात होगी। फिर कभी मेरे सामने यह बात कहोगी तो मैं सहन नहीं कर सकता।"—राजाराम गरज उठा।

"इसमें बुराई क्या है ? तुम तो पराये नहीं हो। वह तुम्हारे मामा की बेटी तो है।"

"तो उचित और अनुचित, योग्यता आदि देखने की ज़रूरत नहीं ? रिश्ते में वह मामा की बेटी होने-मात्र से क्या मेरी पत्नी बन सकती है ?[1] क्या और बातों को देखने की ज़रूरत नहीं ?"

"इस सम्बन्ध में मैं कभी तुमसे कुछ नहीं कहूंगी। लेकिन इतना तो ध्यान रखो—किसी न किसी प्रकार प्रयत्न करके सुहासिनी के लिए एक अच्छे और योग्य वर को ढूंढ़ो। यह सारा भार तुम्हारे ऊपर है।"

"अम्मा, मैं तो दिलोजान से कोशिश करूंगा ही, साथ ही

---

१. आन्ध्र प्रदेश में मामा की बेटी (ममेरी बहन) के साथ विवाह करने की परिपाटी है, परन्तु क्रमशः यह प्रथा उठती जा रही है।

दीनदयालजी से भी कहना अच्छा होगा। वे बड़े अनुभवी हैं। उनके द्वारा यह काम जल्दी सफल हो सकता है।"

"दीनदयाल की मदद तो हमें लेनी ही चाहिए। लेकिन डॉक्टर के घर में घटी हुई घटना से वे बहुत दुःखी हैं। सुहासिनी को अपना मुंह दिखाने में लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। इसलिए कहला भेजने पर भी आने में वे संकोच कर रहे हैं। उनसे जो कुछ भी होगा हमारी मदद करेंगे ही। उनपर अधिक भार न डालकर हमें ही देखना अधिक अच्छा होगा।"

"अच्छा है, मां, ऐसा ही होगा।"—राजाराम ने घड़ी देखी। बड़ी आतुरता के साथ सुहासिनी के कमरे में दौड़ गया। देखता क्या है, सुहासिनी लेटे-लेटे छत की ओर देखती हुई किसी गहरी सोच में निमग्न है।

राजाराम ने सुहासिनी को दवा पिलाई। दवा की शीशी राजाराम के हाथ में दे सुहासिनी उसकी तरफ देखती ही रही। आज उसकी दृष्टि में एक विचित्र अनुभूति थी। ऐसी अनुभूति को राजाराम ने कभी नहीं देखा। राजाराम का शरीर एक विचित्र आनन्द के अनुभव से पुलकित हो उठा।

सुहासिनी ने राजाराम और सीतालक्ष्मी का सारा वार्तालाप सुना। राजाराम के उदात्त हृदय का परिचय पाकर वह दंग रह गई। उसने कभी नहीं सोचा था कि राजाराम की नसों में ऐसे उत्तम गुण घर कर गए हैं। व्यक्ति बाहर से देखने में कभी-

कभी पागल-सा भी दिखलाई देता है। लेकिन उसके दिल के भीतर उज्ज्वल गुणों से युक्त देवता का जो निवास होता है, उसे बहुत कम लोग पहचान पाते हैं। जो पहचानता है, वही उसका भक्त हो जाता है। इसलिए आत्मा और शरीर में कोई साम्य नहीं होता है। किसीके चेहरे को देख उसकी हृदय-गत भावनाओं को पढ़ सकना कभी सम्भव है, तो कुछ व्यक्तियों में वह असम्भव भी। कुछ लोग प्रयत्नपूर्वक अपनी भावनाओं का अपने मनोविकार या क्रियाओं के द्वारा प्रदर्शन करते हैं, तो कुछ लोग उन्हें छिपाने में अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। लेकिन उनका मूल्यांकन उसी समय होता है जब उनसे वास्तविक रूप को देखा जाता है। पृथ्वी देखने में सब जगह समान ही दिखती है, लेकिन उसके गर्भ में किसी जगह कौन-सी अमूल्य धातुएं छिपी पड़ी हैं, क्या पता ?

राजाराम की अपूर्व सेवा से सुहासिनी काफी प्रभावित हुई। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की निःस्वार्थ भाव से, श्रद्धा के साथ सेवा करता है तो वह महान ही कहा जाएगा। सेवा का भाव मनुष्य के सर्वोत्तम गुणों में मुख्य माना जाता है। आज उसके विचारों से सुहासिनी इतनी प्रभावित हुई कि अनायास ही उसका हृदय राजाराम की ओर आकृष्ट हुआ। उत्तम गुण हृदय की स्वच्छ रागात्मक वृत्तियों को उत्तेजित करते हैं···ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए त्यों-त्यों सुहासिनी राजाराम के चरित्र और व्यवहार से प्रभावित हो उसकी ओर झुकती ही गई।

"राम, तुम बड़े भाग्यशाली हो।"

"मां, मैं अभी तक समझ नहीं पाया, मुझमें कौन-सा ऐसा गुण है, जिसे देख सुहासिनी ने यह निर्णय किया। यह उसकी उदारता और त्याग ही कहा जा सकता है।"

"त्याग करने में मनुष्य ऊपर उठता है। त्यागी का संकल्प सुनिश्चित होता है। मैंने पहले ही तुमसे कहा था, तुम गरज उठे थे।"

"उसके दिल की बात जाने बिना हम लोगों के इच्छा करने-मात्र से क्या होता है, मां! उसीके घर में रहते उसको पाने का प्रयत्न करना हमारी ज़्यादती न होगी? सिवाय इसके मैंने कई ऐसी भूलें की हैं, जिन्हें कोई क्षमा नहीं कर सकता है। आज मैं भले ही बदला हुआ होऊं, लोग तो यही शंका करेंगे कि पहले की आदतों की गन्ध बनी रहेगी और समय पाकर फैल जाएगी। इसलिए मां, व्यक्ति गिरता है तो उसके सुधर जाने पर भी समाज उसपर यकीन नहीं करता। उसे शकालु दृष्टि से देखता है।

"यहां तक कि मानवता पर जिनका प्रगाढ़ विश्वास है, वे व्यक्ति के सुधार को तो महत्त्व देते हैं, किन्तु पतित व्यक्तियों पर सहसा विश्वास नहीं कर पाते हैं। मनुष्य में बहुत बड़ा मानसिक परिवर्तन तभी होता है जब उसके जीवन में मोड़ ला सकनेवाली कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटित हो। ठोकरें खाकर आदमी संभल जाता है, संभलने की कोशिश

करता है तो उसपर यकीन किया जा सकता है।

" सुहासिनी ने सचमुच त्याग ही किया है मां। "

"त्याग करने के लिए अनुकूल वातावरण भी तो चाहिए।"

"तो तुम समझती हो, उस वातावरण की सृष्टि तुमने ही की है ? उसके पिता होते तो क्या मुझ जैसे व्यक्ति को वह अपने गले बांधती ? बोलो, चुप क्यों हो, मां ?"

"मैं मानती हूं। आज की हालत में तुम्हीं उसके योग्य पुरुष हो। हां, तुमने जो भूलें कीं, वे सब अनजान में। भूल करके जो पहचानता है, वही बड़ा है। अपनी भूल को स्वीकार कर उसे सुधारना व्यक्ति का बड़प्पन ही कहा जाएगा।"

"हां मां, तुम्हारा बेटा बड़ा है। तुम छोटा कैसे कहोगी ?"

हाल में दीनदयाल को कदम रखते देख मां-बेटे ने उनका स्वागत किया।

विवाह-सम्बन्धी कई बातों पर चर्चा हुई। सुहासिनी के इस निर्णय की दीनदयाल ने बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने दस-बारह दिन पूर्व जब विवाह का प्रस्ताव रखा था, उस वक्त काफी बहस हुई, आखिर सुहासिनी ने राजाराम की इच्छा जानने को कहा तो स्वयं दीनदयाल आश्चर्यचकित हुए और उनके नेत्रों से आनंदाश्रु छलक आए थे।

आज राजाराम में भी उदात्त भावनाएं देख दीनदयाल बहुत ही खुश हुए। विवाह के खर्च और प्रबन्ध के सम्बन्ध में भी काफी देर तक चर्चा हुई।

उचित निर्णय के बाद की तैयारियां होने लगीं।

संध्या का समय था।

'शान्ति निलय' के सामने बड़ी चहल-पहल थी। बड़ा पंडाल केले के स्तम्भों, बिजली की बत्तियों और रंग-बिरंगे फूलों से अलंकृत था। लोग उत्साह के साथ विवाह की तैयारियों में हाथ बंटा रहे थे। सुहासिनी के पिता के जितने भी स्नेही व परिचित थे, सब इन तैयारियों में दिलचस्पी ले रहे थे। सुहासिनी के मना करने पर भी लोग वस्तु-रूप में मदद देते रहे। यह सोचकर वह स्वीकार करती गई कि लौटाने पर वे दुःखी होंगे।

राजाराम और सीतालक्ष्मी भी विवाह के प्रबन्ध में जी तोड़ मेहनत करते थे। सुहासिनी सारा प्रबन्ध देख तो लेती थी, किन्तु उसका मन अपनी बहन को देखने के लिए छटपटाने लगा। बार-बार वह फाटक की ओर झांकती, फिर आया न देख चिंतित हो जाती। कलकत्ता-मेल के आने का वक्त हो गया।

सरला के आगमन का प्रतीक्षित मुहूर्त भी आया। शंकरन नायर अकेले लाठी टेकते हुए कुछ सामान लिए आ रहे हैं।

तब भी सुहासिनी ने सोचा, सरला पीछे आती होगी इसलिए शंकरन नायर के समीप लपककर सुहासिनी ने पूछा—

"दादा, सरला कहां है ?"

"कल सुबह तक पहुंच जाएगी। आज उसकी प्रैक्टिकल परीक्षा थी। वह ज़रूर आएगी।"

नायर से कुशल-प्रश्न पूछ ही रही थी कि उसका मन विवाह की तैयारियों में हाथ बंटाने को व्याकुल हो उठा। वह भी उन लोगों में शामिल हो गया।

सुबह की गाड़ी भी आई, किन्तु सरला का पता नहीं। सुहासिनी अधीर हो उठी। अपने विवाह के समय बहन की अनुपस्थिति उसे चिन्ताकुल बनाने लगी। उसका विश्वास अभी बना हुआ था, बहन आएगी, अवश्य आएगी। विवाह का मुहूर्त साढ़े दस बजे था। इस बीच कोई गाड़ी भी नहीं थी। न मालूम क्यों सुहासिनी के मन में बहन के आ जाने का विश्वास था।

मंगल-सूत्र बांधा जा रहा था। शहनाइयों की मधुर ध्वनि गूंज उठी। दुलहन सुहासिनी ने फाटक की ओर देखा। उसके खुलने की आवाज़ न देख उसकी आंखों से दो बड़ी-बड़ी गरम आंसू की बूंदें गिरीं। सुहासिनी ने ज्योंही सिर झुकाया त्योंही सामने बैठे राजाराम के चरणों पर वे बूंदें गिरकर फिसलने लगीं। चौंककर राजाराम ने सुहासिनी की ओर देखा। उसे लगा, सुहासिनी के हृदय-सिन्धु में कोई घोष सुनाई

दे रहा है।

इस शुभ घड़ी में शोक ? आनन्द के साथ यह शोक भी अपना नाता जोड़े मानव को जगत् के किसी चिरंतन सत्य का बोध करा रहा हो जैसे !

समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता, चाहे सौ भेंटें चढ़ावें, हज़ारों मिन्नतें करें, लाखों बार करुणापूर्ण स्वर में क्यों न पुकार उठें। दिल की धड़कन की भांति घड़ी का पेंडुलम धड़कता रहता है। सेकण्ड मिनट में, मिनट घंटों में...साल और युग के युग ही बीत जाते हैं। इसीलिए सांझ के समाप्त होते ही उषा आ धमकती है। अन्धकार से व्यक्ति प्रकाश को देख फिर से उत्साह से भर उठता है। यही दुनिया का क्रम है।

वर-वधू को लोगों ने अक्षत फेंककर आशीषें दीं। सुहासिनी राजाराम का विवाह संपन्न हुआ।

जीवन में विवाह आनन्द का समय होता है। उस समय के व्यतीत होने के बाद व्यक्ति के जीवन में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

विवाह-संस्कार तो पूरा हुआ। सुहासिनी का मन बेचैन था—'सहोदरी क्या राजाराम के साथ विवाह को पसन्द नहीं करती, इसीलिए तो नहीं आई। छिः मैं यह क्या सोच रही हूं, सरला के प्रति ऐसी कल्पना नहीं करनी है।' इन्हीं विचारों में निमग्न थी।

शंकरन नायर को देख उसने सरला के न आने का कारण पूछा। दुःखी हृदय से नायर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सुहासिनी पर मानो विजली गिर पड़ी। झंझावत के प्रकोप से जिस प्रकार बड़े-बड़े वृक्षराज पृथ्वी पर गिर जाते हैं, वैसे ही सुहासिनी चिल्लाकर धड़ाम से गिर पड़ी। उसके हृदय में प्रलय-काल का महाघोष प्रतिध्वनित होने लगा।

२८

रात-भर गाड़ी में सुरेश की आंखों में नींद नहीं रही। वह मन ही मन अपने पिता को कोसने लगा। तार में समाचार देते तो वह निश्चिन्त घर पहुंचता। शायद कोई अनहोनी बात होगी, तभी तो उसका उल्लेख नहीं किया गया है। सच्ची बात बता देने से मैं घबरा जाऊं, यह सोचकर यूंही तुरन्त घर आ जाने को कहा है। और कोई कारण न होगा। माता मृत्यु-शय्या पर होगी।

सोचते-सोचते सुरेश का दिल कांप उठा। मेरे घर पहुंचते तक मां जीवित होगी ? उसको मैं देख पाऊंगा ? मुझसे कितना प्यार करती है ! पिताजी नाराज़ होते या डांटते तो मेरा पक्ष लेकर मुझे बचाती ; मैं जो भी मांग करूं, मंगवा देती ; जितने भी रुपयों के लिए लिखूं, पिताजी से लड़-झगड़कर भिजवा

दती है। मां न होती तो मेरी जिन्दगी आराम से न कटती। इतना बड़ा हो गया हूं, लेकिन क्या हुआ अब भी मैं उसकी आंखों का तारा हूं, उसका पुत्र हूं, लाड़ला हूं।

ऐलूर स्टेशन पर उतरकर घबराते हुए सुरेश ने घर में प्रवेश किया। उसका दिल धड़क रहा था। उसकी आंखें घर में चारों ओर किसीको ढूंढ़ने लगीं। सामने अपनी मां को देख वह अपनी आंखों पर यकीन न कर सका। उसने जो कुछ भी कल्पना की थी, सब झूठ निकली। उसकी मां तो स्वस्थ और प्रसन्न है।

बेटे को देखते ही बासन्ती बहुत खुश हुई। आज सुबह ही सुबह उठते ही उसने सोचा था कि आज सुरेश ज़रूर आएगा। उसने पूछा :

"बेटा, क्यों इतने दुबले-पतले हो गए हो? खाना अच्छा नहीं मिलता है क्या?"

"नहीं मां, खाना तो अच्छा ही मिलता है, परीक्षा नजदीक आ गई है न! रात-भर जागकर ज़्यादा पढ़ने से विद्यार्थी सब कमज़ोर हो जाते हैं। दिमागी मेहनत आदमी को चूसती है, मां!"—सुरेश ने अपनी चालाकी दिखाई।

बासन्ती सोचने लगी कि उसका बेटा खान-पान भी छोड़कर पढ़ाई में लग गया है। इसलिए वह ज़रूर बड़ा आदमी बनेगा। वह कुछ पूछना ही चाहती थी, सुरेश बोल उठा—"मां, तार क्यों दिया था? क्या बात है मां, जल्दी बताओ।

पिताजी कहां हैं ?"

"तुम्हारे पिताजी बाहर गए हैं, बेटा, आते ही होंगे। हाथ-मुंह धोओ, नहाओ ! सारी बात बताएंगे। वैसे कोई घबराने की बात नहीं है।"

"नहीं मां, मुझे पहले बताओ, ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी थी ?"

"जल्दी की कोई बात नहीं। कोई अच्छा सम्बन्ध आया था। वह निश्चित करने के लिए तुम्हें तार दिया गया।"

"इतनी जल्दी ? पढ़ाई पूरी होने दीजिए, फिर देखा जाएगा।"

"पढ़ाई तो पूरी हो ही जाएगी। जब अच्छा सम्बन्ध आता है तो उससे हाथ धोना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं।" घर में प्रवेश करते हुए बाबू रामप्रसाद ने कहा।

पिताजी को देखते ही सुरेश भीगी बिल्ली बन गया। यह उसकी ज़िन्दगी का सवाल था। इस समय अगर वह मौन धारण करेगा तो उसका लक्ष्य ही बदल जाएगा। इसलिए साहस बटोरकर बोला :

"मेरी सम्मति की कोई ज़रूरत नहीं ?"

"हम तुम्हारे दुश्मन थोड़े ही हैं ? माता-पिता अपनी संतान की भलाई ही चाहते हैं !"

"मैं यह नहीं कहता कि आप लोग मेरी बुराई की बात सोचते हैं। लेकिन मैं चाहता हूं कि पढ़ाई समाप्त होने के

बाद विवाह करें तो अच्छा होगा। नहीं तो पढ़ाई में खलल पड़ेगा।"

"कितने लोग शादी-शुदा हो, नहीं पढ़ते ? अब जो सम्बन्ध आया है, वह तब तक रुका रहेगा, इसकी क्या गारंटी है ? एक ही लड़की है। करीब लाख रुपये की संपत्ति है। अब इसको लात मारोगे तो फिर तुम्हारा मुंह देख कौन एक लाख रुपया देगा ?"

"पिताजी ! लूली हो, लंगड़ी हो, बदसूरत हो, तो भी एक लाख रुपयों के लोभ में पड़कर उसे मेरे गले मढ़ना चाहते हैं ?"

"वाह, तुम भी एक ही निकले, जो सारी बातें जानते हो। कोई भी माता-पिता ऐसा सम्बन्ध स्वीकार नहीं कर सकते। वह लड़की भी हमारे शहर की है। वकील गंगाधर राव को तुम जानते ही हो। हैदराबाद में उसकी वकालत ज़ोरों पर है। लड़की को भी तुमने देखा है। क्या वह काली-कलूटी है ?"

"लड़की अच्छी भले ही हो, क्या मेरी इच्छा की कोई ज़रूरत नहीं ?"

"तुम्हारी इच्छा ? तुम्हारे सिर पर पागलपन सवार है। नहीं तो ऐसी रूपवती और गुणवती लड़की तुम्हें कहां मिलेगी ?"

"पिताजी, मैं अभी शादी करना नहीं चाहता।"

"मैं देखूंगा कि तुम कैसे नहीं करोगे ?"—रामप्रसाद

गरज उठा।

पिता और पुत्र में वाद-विवाद बढ़ते देख वासंती बीच-बचाव करने आई। वासंती ने सुरेश को बहुत कुछ समझाया, फिर भी सुरेश टस से मस न हुआ। यह सम्बन्ध वासंती को भी बहुत पसंद आया था। वह जल्दी अपने पुत्र की शादी भी देखना चाहती थी। सुरेश उनकी एकमात्र संतान था। जब से वह मद्रास गया है, तब से उसे वह घर सूना दिखाई देने लगा। उसकी बहू घर में लक्ष्मी की भांति इधर-उधर घूमती रहे, यह देखने की उसकी बड़ी लालसा थी। इसलिए उसने तार दिलवाकर सुरेश को बुलवा लिया था।

वासंती ने आशा की थी कि सुरेश उसकी बात की कदर करेगा। अब उसे आश्चर्य हुआ कि वह अपने पुत्र के हृदय को भी नहीं जान पाई। उसने निश्चय किया कि साम, दाम, भेद व दंडोपायों से उसे काबू में लाएगी।

यह सोचकर वासंती ने गम्भीर कण्ठ से कहा—"सुरेश, बड़ों के साथ खिलवाड़ मत करो। हमने तुम्हारी खुशी के लिए सब कुछ किया। लेकिन यह हमारी प्रतिष्ठा का सवाल है। हम दोनों ने लड़की के पिता को वचन दिया है। क्या अब हमारी नाक काटना चाहते हो?"

"वचन दिया तो क्या हुआ, मां! अभी यह कह सकते हैं कि मेरे लड़के को पसन्द नहीं आया।"

"सुरेश, भोले मत बनो! दिया हुआ वचन टालना हल्के

नहीं होगा। हमने मुहूर्त भी निश्चय किया है। मैंने ही यह कहकर तुम्हारे पिताजी से सारा प्रबन्ध कराया कि मेरा बेटा मेरी बात जरूर मानेगा। अब तुम अपने माता-पिता की अवहेलना कर हमारे मुंह पर कालिख पुतवाना चाहते हो? इस अपमान को हम कैसे सहन कर सकते हैं? तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं यह सोचूंगी, तुम मेरी कोख से पैदा नहीं हुए हो। मैं भी किसी कुएं में कूदकर आत्महत्या कर लूंगी। तुम जिन्दगी-भर पछताते रहोगे। कोई भी पुत्र अपनी मां को दुःखी नहीं बना सकता। इसलिए सोच लो, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं।"

"मां, मुझे माफ करो। मैं तुम्हारी बात जरूर मानता लेकिन मैंने एक लड़की को वचन दिया है, अगर मैं उससे शादी न करूं तो वह जरूर आत्महत्या कर लेगी। उसके लिए ही सही, तुम मुझे माफ करो, मां।"

"क्या कहा? वचन दिया है? वह भी किसी अनजान लड़की को? तुम पढ़ने गए थे या लड़कियों को साथ लेकर घूमने? यह करते तुम्हें शर्म नहीं आई?"—क्रोध से कांपते हुए रामप्रसाद हुंकार उठा।

"पिताजी, आपके पैरों पड़ता हूं। मेरी भूल को माफ कीजिए। मैंने उससे प्यार करके बहुत बड़ी गलती की। अब बात बहुत बढ़ गई है। अब उसे धोखा देना ठीक नहीं।"

"प्यार किया है, प्यार? तुम तो राह चलनेवाली ह

किसीसे प्यार करोगे और अपने मां-बाप की इज्जत धूल में मिलाओगे। अब भी सही, अपना यह पागलपन छोड़कर दूसरा सम्बन्ध को मान जाओ। वरना हमारा मुंह न देखोगे।"

"पिताजी, पिताजी!"

"अब पिताजी को भूल जाओ। समझो कि तुम्हारा पिता मर गया है।"

"पिताजी..."

सुरेश का दुःख फूट पड़ा। उसके हृदय में द्वन्द्व मचा। एक ओर सरला और दूसरी ओर मां-बाप उसके हृदय में व्याप्त हो उससे वचन लेने पर कटिबद्ध हैं। किसको त्यागे और किसको स्वीकार करे? 'मैं शादी न करूं तो सरला का भविष्य क्या होगा? वह मुझे कोसेगी, कृतघ्न समझेगी, धोखेबाज, धूर्त, कपटी और लंपट समझेगी। और मैं उसे अपना मुंह कैसे दिखा सकता हूं? मेरे कारण पुरुष वर्ग पर से ही उसका विश्वास उठ जाएगा। उसने मुझपर विश्वास किया। मुझे अपना सर्वस्व माना। अपना सब कुछ मेरे चरणों पर अर्पण किया। ऐसी नारी को क्या लात मारूं? नहीं, नहीं, मैं ऐसा पाप कभी नहीं कर सकता। ऐसा कृतघ्न मैं कभी नहीं बनूंगा।'

दूसरे क्षण उसके दिल में उसके मां-बाप छा गए। वे उसे धमकाने लगे, 'तुम हमारी बात मानो, नहीं तो आत्म-हत्या कर लेंगे।' वह सोचने लगा—'मैं अपने मां-बाप की बात न मानूं तो उनकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी। सब लोग

उंगली उठा-उठाकर यह कहेंगे कि यह धोखेबाज़ है। मैं यह कैसे सहन कर सकता हूं ?

'मेरी मां, दयामयी मां, प्रेम की प्रतिमा मां ! उसका दुःख मैं कैसे देख सकता हूं ? उसने मेरे लिए क्या-क्या त्याग नहीं किया ? मुझे जन्म दिया। अपना सब कुछ समर्पित किया। ऐसी मां को मैं कैसे खोऊं ? उसके विना यह सारी दुनिया अन्धकारमय दिखेगी। मुझे अपने मां-बाप के लिए यह त्याग करना ही होगा।'

विकल हो रोते हुए सुरेश चिल्ला उठा :

"पिताजी, आपकी आज्ञा का पालन करूंगा !"

रामप्रसाद ने अपने पुत्र को बदला हुआ पाकर उसे गले लगाया। उस आलिंगन में सुरेश का दिल सरला की कल्पना कर रो पड़ा। सरला आर्तिनी बनकर उसके दिल के किसी कोने में सिसकती रही।

जन्म, विवाह और मृत्यु जीवन पर प्रभाव डालनेवाली अविस्मरणीय घटनाएं होती हैं। जन्म से परिवार बढ़ता है। तो विवाह से परिवार जुड़ता है, पर मृत्यु से संभवतः परिवार का संतुलन होता है। ये तीनों घटनाएं व्यक्ति के जीवन में अवश्य घटित होती हैं, किन्तु विवाह व्यक्ति के संकल्प पर होता है। जन्म और मृत्यु में संकल्प-विकल्प की कोई संभावना नहीं होती। विज्ञान इनपर अंकुश करे, यह तो भविष्य की

चाल है।

मानव के जीवन में मोड़ लानेवाली घटना विवाह होता है। विवाह में किसको स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तो कोई अनिच्छा और दबाव में आकर विवाह-वेदी के सामने बलि का बकरा बनता है।

ऐलूर में 'ज्योति निवास' बिजलियों की बत्तियों से जगमगाने लगा। रामप्रसाद के घर में इधर पचीस सालों से कोई शादी नहीं हुई थी। अपने एकमात्र पुत्र का विवाह बड़ी धूमधाम से मनाने की योजना बनाई। एकसाथ इतनी बड़ी मोटी रकम उनकी तिजोरी में जो आनेवाली है।

रामप्रसाद लोभी है। धन-संग्रह करने की कला में वह निष्णात है। शादी का खर्च अपने समधी के माथे डाल दिया। अपने घर पर बाहरी तड़क-भड़क न दिखाई जाए, तो लोग क्या समझेंगे। इधर दो दिनों से उनका घर विद्युत्-दीपों से रात में भी दिन बना हुआ था।

पर रामप्रसाद-दम्पती की 'आंखों की ज्योति' सुरेश किसी कोने में दुबककर उल्लू बना था। उसे लगता, माता-पिता ज़ोर-दबाव से उसका जीवन-दीप बुझाने पर तुले हुए हैं। क्या इस प्रभंजन से दीप की रक्षा नहीं हो सकती! दो दिन से उसने माथा पच्ची की, मगर कोई राह नज़र न आई। बुझते या टिमटिमानेवाले दीप की लौ में वह अपनी ज़िन्दगी की राह कैसे ढूंढ़ पाएगा।

हावड़ा-हैदराबाद एक्सप्रेस ऐलूर स्टेशन पर खड़ी थी। रामप्रसाद बरात की यात्रा का पहले ही उचित प्रबन्ध कर चुका था। हैदराबाद में कल दुपहर को विवाह सम्पन्न होगा। उस शुभ घड़ी को निर्विघ्न काटने के लिए रामप्रसाद ने शकुन, राहु-काल इत्यादि देखकर अच्छे ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त का निर्णय कराया था। उस लगन में चन्द्रमा बली था। वर-वधू की जन्म-पत्री देख ज्योतिषियों ने अपनी सारी शक्ति-युक्ति इस लग्न के निर्णय में लगा दी थी।

रामप्रसाद बहुत प्रसन्न था। ऐसे मुहूर्त में विवाह होता है तो फिर क्या कहना। यश और धन-लाभ तो है ही, साथ ही पौत्र-लाभ का योग बड़ा ज़बरदस्त है। उसका वंश-वृक्ष युग-युगों तक पल्लवित एवं पुष्पित हो फल देता रहेगा। अपने भाग्य की मन ही मन सराहना करने लगा। ऐसा मुहूर्त किसी भाग्यवान के लिए भी सम्भव नहीं। उसने भी अपने अर्धज्ञान को ले पत्रा को दस-बारह बार उलट-पुलटकर देखा था। इससे हाथ खींचना नहीं चाहते थे, इसीलिए तो पुत्र को तार देकर घर बुलाया वरना ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी थी ?

गाड़ी की रफ्तार क्रमशः तेज़ होती गई। दूरी को निगल अपने गम्य स्थान पर पहुंचने को गाड़ी लालायित हो म[illegible] बेतहाशा भागी जा रही थी।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दुनिया विकल रहती किन्तु साध्य तक कितने लोग पहुंच पाते हैं ?

मानव इस संसार का यात्री है, उसकी ज़िन्दगी यात्रा के समान है। इस यात्रा के समाप्त होते ही वह अनन्त यात्रा का पथिक बनता है।

बरसात का मौसम था। बूंदा-बांदी क्रमशः झड़ी के रूप में बदल गई। पावस का निबिड अन्धकार चारों तरफ फैला हुआ था। रह-रहकर बिजली कौंध उठती। मेघ गरजने लगे। थोड़ी देर में नाले उमड़ने लगे। मैदान और खेत पानी से भर उठे। पानी का प्रवाह उमड़ते मानो गन्दगी को साफ कर दूर फेंकने में तत्पर था। वर्षा का जल धरती पर मैल धोते नालों-नदियों में गिर रहा था। पानी जमा हो-होकर नदियों में बाढ़ आने लगी।

ऐलूर से विजयवाड़ा पहुंचने तक वर्षा नहीं थी। विजयवाड़ा में गाड़ी के छूटने के साथ पानी बरसना भी ज़ोर पकड़ता गया।

सुरेश खिड़की के पास बैठा हुआ था। उसके दिल में बिजलियां कड़क रही थीं, मेघ-गर्जन हो रहा था और विचारों का तूफान उठा हुआ था। उसकी तीव्रता से सुरेश का दिल दहल उठता था।

वह अपनी निरीह हालत पर मन ही मन बैठा विसूरता रहा। उसके चेहरे पर विषाद का नग्न ताण्डव हास कर रहा था। पास बैठे लोग बिजली की कौंध में उसके चेहरे को पढ़ रहे थे। आंधी-वर्षा से कुदरत में जो तहस-नहस होता है और उसका

ावना रूप होता है, वही भीषण रूप सुरेश के मुख-मण्डल पर
लक रहा था। आंधी से पर्वत-मूल हिल जाते हैं, पर भावों के
ावेग से हृदय-मूल भी हिल उठता है। उसके प्रकम्पित अधर
ुछ बड़बड़ा रहे थे। मानो उसकी भावनाएं वाणी का रूप धारण
करने में असमर्थ हो गई थीं।

गाड़ी की गति और भी तेज़ हो गई। झंझावत के धक्कों
से खिड़कियां हिल जाती थीं। तमसाकार प्रकृति में गाड़ी किसी
अज्ञात और अलक्ष्य की ओर बढ़ती प्रतीत हुई।

यात्री सब झपकियां ले रहे थे। सुरेश जाग रहा था। अपने
पिता पर उसे क्रोध आ रहा था। सरला की चिन्ता उसे खाए
जा रही थी। अकेली वह डरती होगी। वह सोचने लगा—
'यह दुनिया भी कैसी खुदगर्ज़ है। दो दिलों को मिलने नहीं देती।
बल्कि अलग कर उन्हें रोते देख खुशी ज़रूर मनाती है। शायद
कुदरत में ही यह जलन है। दो मेघ मिलते हैं तो विद्युत् पैदा होती
है। प्रेम का परिणाम शोक है। संयोग का वियोग पक्ष भी कैसा
सबल होता है। आनन्द-बाष्प-रूपी फूलों के साथ शोक के आंसू
रूपी कांटे भी होते हैं। ये दोनों कैसी अनुभूतियां हैं। एक-दूसरे
का पूरक बनकर चलायमान हैं। किसीके जीवन में सुख पहले
आता है तो किसीके जीवन में दुःख......' सुरेश विचार-सागर
में खो गया। ज़ोर से धक्के से यात्री सब एक-दूसरे से टकराने
लगे। कुछ लोग नीचे गिर पड़े। ऊपर बेंच पर रखा सारा सामान
नीचे आ गिरा।

गाड़ी के और डिब्बे कटकर पटरी पर ही रह गए थे।

रामप्रसाद अपने रिश्तेदारों के साथ अन्तिम डिब्बे में तीसरे दर्जे में बैठा था। सुरेश अपने दोस्तों के साथ दूसरे दर्जे में बैठा था। लेकिन रामप्रसाद ने सभी डिब्बे ढूंढ़े, सुरेश का पता नहीं चला। वह ढूंढ़ता जाता था, उसका हृदय धक-धक करने लगा। डिब्बे में अंधेरा छाया था। इंजन के कट जाने से बिजली की व्यवस्था फेल हो गई थी।

अरुणोदय हुआ। उषा की लालिमा खून की लालिमा से आंख-मिचौनी करने लगी। दुर्घटना-स्थल पर शोक का सागर उमड़ रहा था। कर्मचारियों ने घायल हुए व्यक्तियों को एक जगह लिटाया, लाशों को मैदान में। सब शान्त पड़े हुए थे।

रामप्रसाद उन घायल व्यक्तियों में सुरेश को देख छाती पीटने लगा। बरात के लोगों में हाहाकार मचा। वहां पर करुणा का स्रोत बह चला।

रामप्रसाद को रेलवे-डॉक्टर ने सलाह दी कि अभी हम काजीपेट अस्पताल पहुंचा रहे हैं, वहां चिकित्सा होगी। आप घबराइए नहीं।

मुहूर्त का समय निकट आया देख हैदराबाद में कन्या पक्ष-वाले विकल थे, स्टेशन पर आदमी भेजे गए। पहले मालूम हुआ कि अभी तक गाड़ी नहीं पहुंची। बाद को दुर्घटना का समाचार सुनकर वे सब मोटरकार में ले आने के लिए दौड़े-दौड़े

आए।

मुहूर्त का समय निकट आ रहा है। सुरेश बेहोश हो बिस्तर पर पड़ा हुआ है। उसके सिरहाने रामप्रसाद और वासन्ती दिल की धड़कनें गिनते खड़े हुए थे। सुरेश को दवाई पिलाई गई। थोड़ी देर बाद उसने आंखें खोलीं। यह देख सबकी जान में जान आ गई।

वासन्ती-रामप्रसाद अपने पुत्र का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगे। सुरेश घावों की पीड़ा से कराहने लगा। रामप्रसाद को संकेत कर बिस्तर पर बैठने को कहा। अपने माता-पिता की ओर एक बार करुण दृष्टि प्रसारित कर देखा, जिसमें यह भाव भरा था कि मेरी जिन्दगी की नाव डूबती जा रही है, उबारो।

डॉक्टरों ने जांच करके संदेह प्रकट किया। सुरेश को मालूम हुआ कि अब-तब में उसके प्राण-पखेरू उड़नेवाले हैं। मरने के पहले वह अपने दिल को हलका बनाना चाहता था। अपने पिता जी को निकट बुलाकर क्षीण स्वर में बोला :

"पिताजी, मरने के पहले मुझे क्षमा करें। मैंने अक्षम्य अपराध किया है। मैंने जिस लड़की से प्रेम किया, वह गर्भवती है। आप जल्दी जाकर उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पाप भी आपके माथे लगेगा। आपसे मेरी अन्तिम इच्छा यही है।" सुरेश ने सरला का पता बताया और उसकी आंखें सदा के लिए बन्द हो गईं। उसका मुंह ढीला हो लुढ़क पड़ा।

टूटे तरु की भांति रामप्रसाद पृथ्वी पर गिर पड़ा। वासंती

गाड़ी के और डिब्बे कटकर पटरी पर ही रह गए थे।

रामप्रसाद अपने रिश्तेदारों के साथ अन्तिम डिब्बे में तीसरे दर्जे में बैठा था। सुरेश अपने दोस्तों के साथ दूसरे दर्जे में बैठा था। लेकिन रामप्रसाद ने सभी डिब्बे ढूंढ़े, सुरेश का पता नहीं चला। वह ढूंढ़ता जाता था, उसका हृदय धक-धक करने लगा। डिब्बे में अंधेरा छाया था। इंजन के कट जाने से बिजली की व्यवस्था फेल हो गई थी।

अरुणोदय हुआ। उषा की लालिमा खून की लालिमा से आंख-मिचौनी करने लगी। दुर्घटना-स्थल पर शोक का सागर उमड़ रहा था। कर्मचारियों ने घायल हुए व्यक्तियों को एक जगह लिटाया, लाशों को मैदान में। सब शान्त पड़े हुए थे।

रामप्रसाद उन घायल व्यक्तियों में सुरेश को देख छाती पीटने लगा। बरात के लोगों में हाहाकार मचा। वहां पर करुणा का स्रोत बह चला।

रामप्रसाद को रेलवे-डॉक्टर ने सलाह दी कि अभी हम काजीपेट अस्पताल पहुंचा रहे हैं, वहां चिकित्सा होगी। आप घबराइए नहीं।

मुहूर्त का समय निकट आया देख हैदराबाद में कन्या पक्ष-वाले विकल थे, स्टेशन पर आदमी भेजे गए। पहले मालूम हुआ कि अभी तक गाड़ी नहीं पहुंची। बाद को दुर्घटना का समाचार सुनकर वे सब मोटरकार में ले आने के लिए दौड़े-दौड़े

आए।

मुहूर्त का समय निकट आ रहा है। सुरेश बेहोश हो बिस्तर पर पड़ा हुआ है। उसके सिरहाने रामप्रसाद और वासन्ती दिल की धड़कनें गिनते खड़े हुए थे। सुरेश को दवाई पिलाई गई। थोड़ी देर बाद उसने आंखें खोलीं। यह देख सबकी जान में जान आ गई।

वासन्ती-रामप्रसाद अपने पुत्र का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगे। सुरेश घावों की पीड़ा से कराहने लगा। रामप्रसाद को संकेत कर बिस्तर पर बैठने को कहा। अपने माता-पिता की ओर एक बार करुण दृष्टि प्रसारित कर देखा, जिसमें यह भाव भरा था कि मेरी ज़िन्दगी की नाव डूबती जा रही है, उबारो।

डॉक्टरों ने जांच करके संदेह प्रकट किया। सुरेश को मालूम हुआ कि अब-तब में उसके प्राण-पखेरू उड़नेवाले हैं। मरने के पहले वह अपने दिल को हलका बनाना चाहता था। अपने पिता जी को निकट बुलाकर क्षीण स्वर में बोला :

"पिताजी, मरने के पहले मुझे क्षमा करें। मैंने अक्षम्य अपराध किया है। मैंने जिस लड़की से प्रेम किया, वह गर्भवती है। आप जल्दी जाकर उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पाप भी आपके माथे लगेगा। आपसे मेरी अन्तिम इच्छा यही है।" सुरेश ने सरला का पता बताया और उसकी आंखें सदा के लिए बन्द हो गईं। उसका मुंह ढीला हो लुढ़क पड़ा।

टूटे तरु की भांति रामप्रसाद पृथ्वी पर गिर पड़ा। वासंती

आसमान को सिर पर लेकर माथा पीटने लगी।

वरातियों के हाहाकार से अस्पताल का वह कमरा प्रति-ध्वनित हो उठा।

२९

काले वादल धीरे-धीरे आकाश में फैलते जा रहे हैं। सारी दुनिया अंधकार से आवृत गुफा की भांति डरावनी मालूम होने लगी। आंखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसा लगता था, मानो प्रलय-काल समीप आ गया है।

समुद्र गरजने लगा। उसका गरजन सुनकर लोग भयभीत हो अपने निवासों में सिर छिपाने, जान हथेली पर ले दौड़ने लगे।

यातायात वन्द हो गया। देखते-देखते मद्रास की सड़कें जलमग्न हो गईं। सड़क के किनारे के वृक्ष नीचे गिरकर रास्ते को रोके पड़े हुए हैं। कहीं विजली के खम्भे गिर गए हैं, त कहीं झोंपड़ियों की छतें उड़-उड़कर पतंगों की याद दिला रह हैं। झोंपड़ियों के प्राणी जहां-तहां जान वचाने भागने लगे मवेशी रंभाते खुदगर्ज़ मालिकों की वेरहमी पर आंसू वह लगे।

प्रकृति का भीपण रूप प्रलय का स्मरण दिलाने ल

क्रमशः अंधकार के पर्दे घने होते गए, समुद्र का घोष तीव्रतर होता गया। झंझा-झकोर के गर्जन से लोगों के दिल दहलने लगे।

मानव के हृदय में उठनेवाले तूफान भी तो दिल को दहला देते हैं। लेकिन उनका ज़ोर इतना अधिक होता है कि आदमी ढेर हो जाता है। हृदय तड़प उठता है। उस आलोड़न को सहन करनेवाली ताकत भी जवाब दे बैठती है। कभी-कभी इस आलोड़न से दिल फट जाता है। कभी दुर्बल व्यक्ति के दिल की धड़कनें बन्द हो जाती हैं।

आकाश, समुद्र और हृदय में कैसा साम्य है ! भावना-तरंग, वायु-तरंग और सागर की तरंगों में समान धर्म पाए जाने पर भी उसे अनुभव करने की शक्ति, शायद कुदरत में नहीं है। इसी अनुभव करने के गुण के कारण मनुष्य व्यथा, पीड़ा और दर्द का शिकार बन जाता है।

दिल में भावों का विस्फोट होता है तो मनुष्य को हिला देता है। उस संक्षोभ को अनुभव करने की क्षमता कितने लोग रखते हैं? भुक्तभोगी ही जान सकता है।

ऐसे भावात्मक तूफान नित्यप्रति कितने हृदयों में उठा करते हैं। कितने दिल रोज़ाना फट जाते हैं। चित्रगुप्त के वहीखाते में ही शायद इसका हिसाब अंकित होगा। पर प्रशांतता का अनुभव करनेवाले क्या जानें, इस विडंवना का कोई कारण भी होगा।

सरला चार-पांच दिन से एकान्त जीवन बिताते ऊब उठी है। वातावरण उसके कोमल हृदय को झकझोरने लगा। उसके मन में आज न मालूम कैसी मनहूस बातें उठने लगीं। उनको भूल जाने की उसने कोशिश की, न मालूम क्यों वे और भी उसके मन से चिपकती जा रही हैं। वह खीझ उठी, झल्ला उठी। अपनी सारी ताकत लगाकर उन्हें ज्यों-ज्यों वह अपने दिल से समूल उखाड़ फेंकने की कोशिश करती गई, त्यों-त्यों उनकी जड़ें और भी मजबूत हो जमती गईं।

सरला के हृदय में असंख्य महासागरों के घोष सुनाई देने लगे। वे सब ग्लोब को थपेड़ों में वायुप्रताड़ित तरंगों की भांति हिलाते नज़र आए। उसकी ध्वनि से कर्णपट फटते-से प्रतीत हुए।

यह कैसी विचित्र बात है। वह बाहरी व मूक होती जा रही है। उसे कुछ सुनाई नहीं देता, सुनाई भी देता है तो एक ही अविराम घोष। कुछ बोल नहीं पाती। बोलना भी चाहे तो किससे बोले, क्या बोले ? सब अनुभव करने की ही स्थिति है। उसकी यह दशा पल-भर के लिए भी असह्य प्रतीत होने लगी।

हृदय शून्य होता गया।

परन्तु गर्भस्थ पिंड अपनी चेतनता का परिचय देते हुए मचलने लगा। गर्भ में मानवाकार प्राप्त करनेवाला वह रक्त-पिंड सुन्दर आकृति को पाने का संकल्प ले पंचतत्त्वों का पोषण

करता जा रहा है। प्रकृति अपने कर्तव्य का निर्वाह करती जा रही है। उसे किसीकी चिन्ता नहीं, ईमानदारी से वह कर्तव्य-निष्ठ है।

वह पिंड पवित्र है। उसमें कलंक का अन्वेषण किया नहीं जा सकता। लेकिन वह समाज के सामने आए तो···? समाज के पैने दाढ़ इस अबोध शिशु को निगल नहीं जाएंगे ?

आह! समाज कैसा पत्थर का बना है। मेरे मुन्ने को चबा-चबाकर खा जाएगा।

इसके स्मरण-मात्र से सरला चीख पड़ी। उसकी आवाज़ दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठी।

अन्धकार उसकी ओर घूरता बढ़ रहा था। विद्युत् फेल हो जाने से वह घर और भी डरावना मालूम हो रहा था। एकसाथ सभी बत्तियां जल उठीं। देखा, पास में आज का अखबार पड़ा हुआ था।

सरला अखबार उलटने लगी। भीषण रेल-दुर्घटना का शीर्षक देख वह दया से भर उठी। उसका दिल बता रहा था, न मालूम कितने परिवार उजड़ गए होंगे। कितने बच्चे अनाथ हुए होंगे। कितनी युवतियां विधवा हुई होंगी···

आह! कितने लोग एकसाथ मृत्यु देवता के जबड़ों में पड़कर उसका ग्रास हुए हैं। कितने डिब्बे गिर गए हैं। अरे, ट्रेन का चित्र भी तो छपा है। लो, लोगों की लाशें भी हैं। कैसी दर्दनाक खबर है!

एक बरात का वर भी मर गया है। बेचारी उस युवती पर क्या बीतेगी ? वह अपना सुहाग मनाने चली, तो विधवा बन बैठी। यह किस्मत भी कैसी करामात करती है। किस्मत के सामने मनुष्य असहाय है।

बरात में वर पक्ष के कई लोग बचे, लेकिन वर और उसके दोस्त…सुरेश घायल हुआ…मेरा सुरेश कैसा होगा ? कब आएगा ? वह मनौती मनाने लगी कि उसका सुरेश सुरक्षित लौटे।

अरे, यह तो वही है। वही है। उसकी फोटो भी छपी है। ठीक वही है…वही…

सरला का दिल पत्थर बन बैठा। वह चीखी-चिल्लाई। दहाड़ें मार-मारकर रोई।

नीरव निशीथ का समय। सारी प्रकृति प्रशान्त प्रतीत हो रही थी। वर्षा थम गई थी, तूफान शान्त हो गया था।

सरला ने गम्भीर हो मेज़ के पास पहुंच चिट्ठी लिखी। उसके पैर आगे बढ़े। वह बढ़ती गई। अन्धकार में बढ़ती गई…उस अनन्त की ओर…जहां से लौटना सम्भव नहीं…

३०

दीनदयाल और सीतालक्ष्मी ने सुहासिनी को समझा-बुझाकर शांत किया। राजाराम भी इस नई विपत्ति से हताश हुआ। सबने बड़ी देर तक इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक चर्चा की। अन्त में यह निश्चय किया कि उस लड़के पिता के पैरों पड़कर उनको मनाया जाए और सरला का विवाह मद्रास में ही सम्पन्न किया जाए। इस विषय को गुप्त रखने की बात भी सोची गई।

नवदंपती को साथ ले दीनदयाल, सीतालक्ष्मी और शंकरन नायर मद्रास के लिए रवाना हुए। सबके चेहरे विषाद से भरे हुए थे। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। इस अवांछित दुःख का सभी लोग समान रूप से अनुभव करते मद्रास पहुंचे।

शंकरन नायर सरला का कमरा जानता था। सबको वह बिना किसी तकलीफ के सरला के कमरे के पास ले गया। उस घर के किवाड़ बंद थे। बाहर चबूतरे पर पैंतालीस साल का एक अधेड़ मनुष्य इस प्रतीक्षा में बैठा था कि घर का दरवाज़ा खुलने पर भीतर पहुंच जाए। पहले उसने सोचा कि दरवाज़ा खटखटाने पर सरला आकर खोलेगी। लेकिन यह सोचकर वह चबूतरे पर पड़ा रहा कि यह बुरा संवाद, वह भी अपने पुत्र की मृत्यु की खबर कैसे सुनाई जाए। अपनी बदकिस्मती को रोता हुआ सिर थामे वह वहीं चबूतरे पर

लुढ़क पड़ा, और अपने दुःख को ज़ब्त करने की चेष्टा
लगा। उसके मन में यह भी कल्पना थी कि हठात् यह सम
देने से शायद सरला की हृदय-गति बन्द हो जाए। इसलि
अपने मन में उस शोक के समय भी योजना बना रहा थ
सरला को कैसे समझाया जाए।

शंकरन नायर सबको साथ ले वहां पर पहुंचे। उनको
ही रामप्रसाद उठ खड़ा हुआ। बातों के सिलसिले में उन्हें
हुआ कि वह भी सरला की खोज में आया है।

पहले यह जानकर सबको प्रसन्नता हुई कि उस
का पिता भी आ गया है, अतः समस्या आसानी से
जाएगी। मगर यह जानकर सब विषाद से भर उठे कि उस
की मृत्यु हो गई। रही-सही आशा भी जाती रही। राम
ने सारा वृत्तान्त, जोकि उसके पुत्र ने कहा था, कह सु
यह सुनकर मानो सबपर वज्रपात हो गया। सर
समाचार से ही वे लोग दुःखी थे, अब इस नई विपत्ति
लोगों ने यह अनुभव किया, मानो सिर मुड़ाते ही ओ
हों।

सबकी आतुरता बढ़ गई। राजाराम ने आगे
दरवाज़े पर दस्तक दी। दस्तक देते ही किवाड़ खुल
किवाड़ों को खुलते देख सबने यही सोचा कि सरला ही
रही है। सरला को न देख उसे पुकारते लोग भीतर
लेकिन कहीं उसका पता नहीं मिला। उद्विग्न होकर

रे का कोना-कोना छान डाला। लेकिन सरला कहीं नहीं ाई दी।

जब वे लोग सरला को खोज ही रहे थे कि अचानक दरवाज़ा ाने के कारण जो हवा भीतर आई उससे एक पत्र उड़ता हुआ या और सुहासिनी के चरणों का चुम्बन लेने लगा। उस समय ा लगता था कि सरला की आत्मा उस पत्र में प्रवेश कर ाने अपराधों के लिए अपनी सहोदरी से क्षमा-याचना कर हो।

सुहासिनी ने अपने प्रकम्पित करों से पत्र उठाया। वह ण-भर के लिए विचलित हुई। आंखों के सामने अन्धकार छा ा। धरती धुरी-विहीन हो घूमती नज़र आई। उसका सिर कराने लगा। उसकी हृत्तंत्रियां असावरी का आलाप करने ीं। वह पत्र पढ़ने का उपक्रम करने लगी। किन्तु नेत्र सजल े के कारण अक्षर धुंधले-से दिखाई देने लगे। बहुत प्रयत्न के उसने केवल दो अक्षर पढ़े—'दी···दी···' वह रो पड़ी। ती ही गई। उसे लगा कि सरला उसे पुकार रही है। वह प उठी।

सुहासिनी को रोते देख सबके नयन गीले हो गए। समाचार ानने की उत्कंठा बढ़ती गई। दीनदयाल ने कहा—"बेटी, ा लिखा है पढ़ो तो? हम सब जानना चाहते हैं। [illegible] !"

सुहासिनी अपने आंसुओं को [illegible]—

"दीदी,

आज तक मैं अपनी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करती रही। मैंने केवल वर्तमान को देखा, भविष्य की ओर मेरा ध्यान नहीं था। मैंने जिन्दगी की गहराई मापने की कोशिश नहीं की, न कभी उसपर विचार ही किया।

मैं अपने कर्तव्य को भूलकर अन्धी हो क्षणिक सुख का आनन्द उठाने में ही जीवन का लक्ष्य समझ बैठी थी। मुझे ज्ञात नहीं था कि उसका फल अत्यन्त दुःखदायी होगा। यौवन के उफान पर नियन्त्रण न रख सकने के कारण इन्द्रिय-लिप्सा का शिकार बनी। परिवार की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाया, समाज की रीति-नीतियों का अतिक्रमण किया, सहोदरी की सलाह का तिरस्कार किया। प्रेम-रूपी मृग-मरीचिका के पीछे पड़कर उसका आकण्ठ पान करने की उत्कट अभिलाषा से उसकी उपासना करती गई। आखिर मुझे क्या प्राप्त हुआ? निन्दा, तिरस्कार, अवहेलना, अपमान और ग्लानि।

अपनी भूल का प्रायश्चित्त गर्भस्थ शिशु द्वारा कर रही हूं। अवैधानिक सम्पत्ति की मां बनकर समाज की दृष्टि में पतित बनी। किन्तु मैं सच्ची बात बतला रही हूं, मैंने एक युवक से प्रेम किया था। उसके लिए मैंने अपना सर्वस्व अर्पित किया। मेरी दृष्टि में वह मेरा पति था। यद्यपि नाटकीय रूप में हमारा विवाह नहीं हुआ था, फिर भी हम दोनों एक पवित्र प्रणय-सूत्र में बंध गए थे। हमारा यह बन्धन भले ही समाज न माने, हम सच्चे

अर्थों में पति-पत्नी हैं।

हां, मेरे गले में मंगल-सूत्र नहीं बांधा गया। मैं पूछती हूं कि नैतिक दृष्टि से मंगल-सूत्र की अपेक्षा प्रणय-सूत्र उत्तम नहीं है? लड़की की भले ही इच्छा न हो, माता-पिता ज़ोर-ज़बरदस्ती करके किसी युवक से उस निरीह लड़की के चार लोगों के सामने मंगल-सूत्र बंधवा देते हैं और पीले कागज़ों पर निमंत्रण-पत्र छपवा कर भेज देते हैं तथा दावत-मात्र से वह विवाह वैधानिक हो जाता है!

विवाह दो हृदयों का एक सूत्र में बांधनेवाला पवित्र कर्म है। यहां कुछ औपचारिक संस्कारों की अपेक्षा दो हृदयों के मिलने की अधिक आवश्यकता है। ऐसा न होकर दहेज के लोभ में पड़कर कितने लोग अनिच्छा से विवाह करते हैं और अपने और पराये दिल का सौदा करते हैं, यह सब देखकर भी समाज खुश है। क्योंकि इसकी दृष्टि में वह न्याय है। इन अन्धे नियमों की आड़ में मुझ जैसी कितनी अवलाएं पिसती जा रही हैं, कोई गिनती नहीं! समाज अन्धा है। उसमें दूसरों की मानसिक दशा को जानने की शक्ति नहीं और विवेक भी नहीं।

मैंने इधर कुछ महीनों से कैसे मानसिक क्लेश का अनुभव किया और शोक तथा ग्लानि से पिघलती गई, वर्णन नहीं कर सकती। ऐसी मानसिक अशान्ति को लेकर दूभर जीवन व्यतीत करते इस काया को और कुछ सालों तक घसीटने की अपेक्षा चिर शान्ति ही मुझे कहीं अधिक शान्तिदायिनी प्रतीत हुई।